कल्पलता

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

कुछ चुनी हुई काव्य की अनुपम पुस्तकें

दुलारे-दोहावली	॥), १)
बिहारी-रत्नाकर	४)
मतिराम-ग्रंथावली	२॥), ३)
देव-सुधा (महाकवि देव)	१), १॥)
कवि-कुल-कंठाभरण	॥), १)
आत्मार्पण	॥), १।)
उषा	॥=), १=)
किंजल्क	॥।), १।)
नल नरेश	२॥), ३)
पद्य-पुष्पांजलि	१।), २)
पराग	॥), १)
परिमल	१।), २)
पूर्वा-संग्रह	१॥।), २।)
पंछी	।=), ॥।)
भारत-गीत	॥।=), १।=)
रति-रानी	१॥।), २।)
लतिका	१), १।)
शिवा-बावनी	।)
भ्रमर-गीत-सार	१)
अन्योक्ति-कल्पद्रुम	१), १।)
अष्टयाम	≡)
कविप्रिया	॥≡)
छत्रसाल-ग्रंथावली	१)
गंगा-लहरी	=)
गीतावली	१।)
दीनदयाल-ग्रंथावली	१)
ब्रज-विलास	३)
दृष्टिकूट	॥)
देव और बिहारी	१॥।), २।)
पद्माभरण	≡)
जगद्विनोद	१)

हिंदुस्थान-भर की पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १६०वाँ पुष्प

कल्पलता

लेखक
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
[प्रिय-प्रवास, रस-कलस, बोलचाल,
चोखे चौपदे, चुभते चौपदे आदि
पुस्तकों के रचयिता]

मिलने का पता
गंगा-ग्रंथागार
३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २)] सं० १९९४ वि० [सादी १॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

स्मृति-चित्र

प्राक्कथन

वर्तमान हिंदी-ससार मे ऐसा कौन व्यक्ति है, जो महाकवि श्रीपं॰ अयोध्यासिहजी उपाध्याय 'हरिऔध' की अमर रचनाओं से परिचित न हो। उनके 'प्रिय-प्रवास', 'बोलचाल', 'चोखे चौपदे' तथा 'रस-कलस' आदि सत्काव्य-ग्र थ हिंदी-काव्य-साहित्य के सौम्य सदन के रुचिर, रोचक रत्न हैं, जो अपनी अनुपम आभा से चतुर्दिक् चमकते हुए उसे चारुता से चमका रहे हैं, और चिर काल तक चमकते तथा चमकाते रहेगे।

श्रीउपाध्यायजी के लिये यह कहना भी सर्वथा उपयुक्त है कि वह इस समय के प्रतिनिधि महाकवि हैं। उनकी-सी बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति हिंदी-जगत् मे नहीं है। उन्होंने अनेक रूप से सरस्वती की सेवा की है। यदि उनका 'प्रिय-प्रवास' उच्च कोटि की, संस्कृतप्राय साहित्यिक खड़ी बोली का अप्रतिम काव्य है, तो उनके 'बोलचाल' और 'चोखे चौपदे' ग्र थ मुहाविरेदार, साधारण बोलचाल की खड़ी बोली के अनुपम अलकार हैं। इसी प्रकार उनका 'रस-कलस' रस-सिद्धात का एक पांडित्य-पूर्ण, प्रशस्त ग्रंथ होता हुआ उनके ब्रज-भाषा-काव्य-कला-कौशल का अकेला उदाहरण है। उपाध्यायजी महाकवि तो हैं ही, साथ ही उच्च कोटि के गद्य-लेखक और साहित्य के प्रकांड पडित भी।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद से आपने जो विद्वत्ता-पूर्ण भाषण दिए हैं, उनसे आपकी सुयोग्यता तथा भाषण-पटुता स्पष्ट ही है। आपका 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' गंभीर गवेषणा,

विशद विवेचना तथा मार्मिक आलोचना का श्लाघ्य ग्रंथ है। सूक्ष्मतया कहना चाहिए कि उपाध्यायजी इस समय के एक सर्वोच्च महाकवि, आचार्य तथा सिद्धहस्त लेखक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक खड़ी बोली में लिखी गई आपकी मुक्तक रचनाओं का एक सुंदर संग्रह है। मुहाविरेदार, चलती हुई खड़ी बोली का उपयुक्त उपयोग काव्य-क्षेत्र में किस प्रकार हो सकता है, यह इस पुस्तक की भाषा से ज्ञात हो जाता है। उर्दू की काव्य-भाषा मे मुहाविरो का सदुपयोग तथा शब्दो का सुप्रयोग ही प्राण होता है, इससे उर्दू की कविता सरल-सुबोध होकर सुंदर तथा समाकर्षक हो जाती है, और अपने भावो को पाठको या श्रोताओं के हृदयगम कर स्थायी-सा कर देती है। इसी को हिंदी-कविता में भी लाने का सफल तथा सराहनीय प्रयत्न इस पुस्तक मे किया गया है। छंद भी बडे ही सुंदर, सरल और सुगेय चुने गए हैं।

मुहाविरे ही प्रत्येक भाषा के रोचक रत्न-से हुआ करते हैं। उनमे विचित्रतामयी विशेष व्यजकता रहती है, इसी से प्रायः वे बडे ही समाकर्षक तथा हृदय-हर्षक ठहरते है। उर्दू की कविता मे उर्दू के कवि भाव-भावना-भरे मंजुल मुहाविरों के लाने की सदा चेष्टा करते हैं, और मुहाविरों के सदुपयोग तथा उनकी समीचीनता का बड़ा ध्यान रखते हैं। उर्दू-काव्य के सुयोग्य समालोचक काव्य मे मुहाविरो की उपयुक्तता तथा उनके सदुपयोग की ओर बडी पैनी दृष्टि डालते हैं। यदि किसी रचना में कहीं मुहाविरे या उसके प्रयोग मे कुछ भी त्रुटि हुई, तो वे उसे अक्षम्य मानकर उस कविता को अच्छा नहीं कहते। उनका मत है कि भाषा का यथोचित ज्ञान तथा उसके सुप्रयोग का अभ्यास होना कवि मे सदैव अनिवार्य है। यदि कविता की भाषा ही ठीक नहीं, तो उसमे भाव कैसे अच्छे आ सकते हैं। अच्छे भावों का ही होना काव्य में काव्यता नहीं लाता, जब तक वे अच्छे भाव

अच्छी भाषा में, विचित्र व्यवस्था के साथ, चारु चमत्कृत रंग-ढंग के द्वारा न व्यक्त किए गए हो। यह विचार वस्तुतः बहुत अंशो में ठीक है। खड़ी बोली की कविता मे कवि लोग प्रायः भाषा की ओर यथेष्ट ध्यान नही देते। मुहाविरो का सत्प्रयोग तो प्रायः होता ही नही। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि प्रायः खड़ी बोली के कवि भाषा तथा उसके सुप्रयोग का ज्ञान प्राप्त करके उसका अभ्यास करने का प्रयत्न ही नही करते, और 'कवियशःप्रार्थी' हो रचना कर चलते हैं। साथ ही वे किसी कवि-कर्म-दक्ष तथा काव्य-कला-कुशल कवि की सेवा मे रहकर कुछ सीखते भी नहीं, और अपनी रचनाओ का संशोधन भी नही करा लेते।

उर्दू-शायरी मे, भाषा-ध्यान के कारण, एक विशेषता यह आ जाती है कि अच्छे शायरो की रचनाओ मे से कितनी ही पंक्तियाँ लोकोक्तियो और मुहाविरो के रूप मे प्रचलित हो जाती है। उर्दू-शायरी मे ऐसी अनेक पंक्तियाॅ मिलती है, जिनके अकेले पढ़ने या सुनने से यथेष्ट आनद प्राप्त हो जाता है। खडी बोली की रचनाओ मे से ऐसी पंक्तियाॅ निकाली ही नही जा सकतीं, और यदि कहीं मिलीं भी, तो बहुत ही अल्प संख्या मे। फिर उतनी अच्छी नही, जितनी उर्दू की ऐसी पंक्तियाॅ होती है। हाॅ, प्राचीन ब्रजभाषा-कविता मे ऐसी पंक्तियाॅ बहुत मिलती है।

श्रीउपाध्यायजी की इस पुस्तक मे जो मुक्तक रचनाएँ हैं, उनकी भाषा बहुत ही सुगठित, सुबोध, स्पष्ट और भावमयी है, उसमे मुहाविरो का यथास्थान अच्छा प्रयोग हुआ है, जिससे रचनाओ की व्यंजकता बढ़ गई है, और वे विशेष मनोरम हो गई हैं। अनेक ऐसी पंक्तियाॅ मिलती हैं, जिन्हे पढ़ने से यथेष्ट आनद प्राप्त होता है।

उपाध्यायजी की भाषा मे एक विशेषता यह और है कि उन्होंने एक ही शब्द से बने हुए कतिपय अन्य शब्दो का भावानुसार साथ-साथ

बड़ा ही सुदर प्रयोग किया है। साथ ही पदावली प्रायः सुचारु रूप से अलंकृत रखकर और भी रुचिर-रोचक कर दी है। खड़ी बोली की रचनाओं मे ऐसी अलकृत पदावली प्रायः नही पाई जाती।

जो कविताएँ बच्चों के लिये लिखी गई हैं, उनमे साधारण और बच्चों के उपयुक्त भाव अति सरल तथा स्पष्ट भाषा मे, स्वाभाविकता के साथ, सराहनीय ढग से, रक्खे गए हैं। किंतु जो कविताएँ बडों के लिये हैं, उनमें भाव-गौरव, कला-कौशल तथा भाषा-गाभीर्य चमत्कृत शैली-सौंदर्य के साथ पाया जाता है। इस प्रकार इस पुस्तक मे सगृहीत कविताएँ बाल-वृद्ध सभी के लिये मनोरजनकारिणी हैं, और इस पुस्तक को "यथा नामा तथा गुणः" बनाती हैं।

प्रायः देखा जाता है कि कवि लोग कुछ ही छदों मे रचना करने का अभ्यास कर लेते हैं, और उन्हीं छंदों मे उनकी रचनाएँ अच्छी होती हैं, अन्य छंदों मे या तो वे लिखते ही नहीं, या यदि लिखते भी हैं, तो उतना अच्छा नहीं लिख पाते। ऐसे बहुत ही कम कुशल कवि हुए हैं, जिनमे विविध छदों में सफलता के साथ रुचिर रचना करने की क्षमता रही है। उपाध्यायजी ऐसे ही कला-कुशल महाकवि हैं, जिन्हें विविध छदो मे समान सफलता के साथ रचना करने की पूरी क्षमता प्राप्त है। इस पुस्तक मे जिस प्रकार हिंदी-भाषा के विविध रूपो का दिव्य दर्शन मिलता है, उसी प्रकार विविध छंदो के भी रुचिर रूप दिखाई पड़ते हैं।

हमें यहाँ इस पुस्तक तथा श्रीउपाध्यायजी की प्रतिभा की आलोचना नहीं करनी। यहाँ इसके लिये उपयुक्त स्थान और समय भी नहीं, इसीलिये केवल कुछ विशेषताओं की ओर अगुल्या निर्देश कर दिया गया है। अब तक उपाध्यायजी ने जो काव्य-रचना कर स्तुत्य साहित्य-सेवा की है, उसकी मार्मिक आलाचना के लिये एक बड़े ग्रंथ की आवश्यकता है, फिर अभी उनकी प्रकाम प्रतिभा से और

भी बहुत बड़ी आशा हमें है। हम तो इसीलिये यहाँ केवल यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि इस समय उपाध्यायजी हिंदी-काव्य-क्षेत्र तथा साहित्य-क्षेत्र में अप्रतिम प्रतिभावान् महाकवि एवं आचार्य हैं, और यह आपकी अमर कृतियाँ स्पष्ट रूप से सिद्ध और प्रसिद्ध भी कर रही हैं।

अंत मे हम उपाध्यायजी को उनकी सराहनीय सफलता पर सहर्ष हार्दिक बधाई देते हैं। साथ ही आशा रखते है कि सहृदय हिंदी-संसार इस पुस्तक का समादर करता हुआ हमारा साथ देगा। तथास्तु।

रमेश-भवन, प्रयाग
१२। २। ३७

विद्वज्जन-कृपाकाङ्क्षी—
रामशंकर शुक्ल 'रसाल' (एम्० ए०)

विषय-सूची

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
(१)	विभुता-विभूति	प्रेम-प्रलाप	१
		राम	२
		मेरा राम	४
		अवलोकन	५
		सबमें रमा राम	६
		प्यारा राम	८
		हमारा राम	६
(२)	लोक-रहस्य	अलौकिक गान	११
		नियति-नियमन	१४
		प्रेमा	१५
		मयक	१७
		नर-नारी	१८
(३)	अतर्नाद	असार जीवन	२१
		विरह-निवेदन	२२
		उपहार	२३
		धूल	२४
		मनोव्यथा	२५
		हृदय-वेदना	२७

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
(४)	जातीय सगीत	विशाल भारत	३०
(५)	मंत्र-साधन	सिद्धि-साधना	३३
		त्याग	३५
		त्याग भूमि	३८
		शिक्षा का उपयोग	४०
		शक्ति	४२
(६)	प्रकृति-प्रमोद	मधु-मत्त	४४
		वसंत	४५
		मधुर विकास	४७
		वर्षाकालिक सांध्य गगन	४८
		पारिजात	५१
		बहुरंगी फूल	५३
(७)	सूक्ति-समुच्चय	प्रकृत पाठ	५५
		कामना	५७
		तंत्री के तार	५७
		मर्म-व्यथा	५८
		सम्मान	५८
		मै क्या हूँ ?	५६
		सौंदर्य	६०
		असहृदयता	६४
		दीया	६६

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
		गीता-गौरव	६७
		अतीत संगीत	६८
		वैध विहार	७१
(८)	कमनीय कामना	कांत कामना	७३
		मुरली की तान	७४
		वीणा-झंकार	७५
		मंगल-कामना	७६
		कामना	७८
(९)	नीति-निचय	मन का	७९
		लहर	८१
		शांति	८२
		हाहाकार	८४
		विबोधन	८५
		भारत के नवयुवक	८६
(१०)	मर्म-बेध	देश	८९
		हृदय-वेदना	९०
		सूखा रग	९१
		अंतर्दाह	९२
		अंतर्नाद	९३
		मनोवेदना	९५
		प्रलाप	९७

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
		अतर्वेदना	९८
		करुण दशा	९९
		परिवर्तन	१००
		विजयागमन	१०५
(११)	मर्म-स्पर्श	प्रेम-परख	१०६
		हृदय-दान	१०९
		वितर्क	११०
		कुल-ललना	१११
		शक्ति	११३
		परिवर्तन	११४
		सहेली	११५
(१२)	सजीवन रस	सफलता-सूत्र	११७
		सफल लोक	११९
		युवक	१२०
(१३)	जीवन-सग्राम	जीवन-रण-नाद	१२३
(१४)	त्रिविध रचनावली	कवींद्र-पंचक	१२८
		स्वागत-गान	१२९
		समाज	१३१
		क्रांति	१३२
		सहेली	१३३
		राजस्थान	१३४

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
		विडंबना	१३६
(१५)	विजयिनी विजया	विजया	१३८
		विजय-विभूति	१३८
		विजया-विभव	१३९
		उल्लास	१४०
		विजया	१४२
(१६)	दीप-मालिका-दीप्ति	दीपावली	१४३
		दीप-माला	१४५
		दीवाली	१४६
		दीपावली के प्रति	१४८
		अनुरोध	१४९
		आकाश-दीप	१५०
		दीपमालिका	१५१
(१७)	फाग राग	गुलाल की मूठ	१५२
		मुग्धा	१५३
		मधुर मधु	१५५
		गुलाल	१५६
		रँगीली	१५७
		अश्रु-विसर्जन	१५८
		युगलानंद	१५८
		फाग	१५९

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
		होली की ठठोली	१६१
		मानस-अनुराग	१६२
		फाग-अनुराग	१६३
		रंग में भग	१६४
(१८)	बाल-विलास	विनय	१६६
		बाल्य-काल	१६७
		बाल-भाव	१६९
		लुभावने फूल	१७०
		तितली	१७१
		बालक	१७२
		पिता का प्यार	१७४
		बाल-कविता	१७६
		सोना और सुगंध	१७६
		लाल	१७७
		मेरा लाल	१७८
		चमकीले तारे	१७८
		तारे	१७९
		चद	१८०
		लाड़िले का लाड़	१८१
		लड़कपन	१८२
		भोला-भाला लाल	१८४

क्रम-संख्या	शीर्षक	विषय	पृष्ठ
		चिड़ियाँ	१८६
		खेल	१८७
		कोई लाल	१८८
		काम की बातें	१८६
		चंद-खिलौना	१६०
		चंद	१६१
		चदा मामा	१६२
		फूल और तारे	१६४
		माता	१६४
		चाह	१६५
		बालक	१६५
(१६)	कामद कवित्त	भाव-भक्ति	१६७
		गगा-गौरव	२००
		भारत-विभूति	२०३
		विधि-विधान	२०४
		मोह-महत्ता	२०५
		प्राकृतिक दृश्य	२०७
		विविध विषय	२०६
		दो सवैए	२१३
(२०)	ब्रज-भाषा के पद्य	कांत कवित्त	२१४
		सरस सवैए	२२२

विभुता-विभूति

प्रेम-प्रलाप

भरे हैं उसमें जितने भाव,
मलिन है, या वे हैं अभिराम,
फूल-सम है या कुलिश-समान,
बताऊँ क्या मै तुझको श्याम !
हृदय मेरा है तेरा धाम।

गए तुम मुझको कैसे भूल,
किसलिये लूँ न कलेजा थाम।
न बिछुड़ो तुम जीवन-सर्वस्व !
चाहिए मुझे नहीं धन-धाम।
तुम्हीं मेरे हो लोक-ललाम।

रँग सका मुझे एक का रंग,
दूसरों से क्या मुझको काम।
भला या बुरा मुझे लो मान,
भले ही लोग करें बदनाम।
रमा है रोम-रोम में राम।

गरल होवेगा सुधा-समान,
सुशीतल प्रबल अनल की दाह ;
बनेगी सुमन - सजाई सेज
विपुल कंटक - परिपूरित राह ।
हृदय में उमड़े प्रेम-प्रवाह ।
बताता है, खग-वृंद-कलोल,
सरस-तरु-पुंज, प्रसून - मरंद,
वायु - संचार, प्रफुल्ल मयंक,
हमारा व्रज - जीवन - नभ - चंद
सत्य है, चित है, है आनंद ।

राम

रक्त-रंजित था समय-प्रवाह ;
चमक थी रही काल-करवाल ।
कँप रहा था त्रिलोक अवलोक
कालिका-नर्तन परम कराल ।
दनुजता का दुरंत उत्साह
लोक का करता था संहार ।
सह न सकता था प्राणिसमूह
पाशविकता का प्रबल प्रहार ।

विधूनित था विधि-बद्ध विधान ;
दहल था रहा समस्त दिगंत ।
विकंपित था वृंदारक-वृंद ;
हो रहा था मानवता-अंत ।
तिमिर-पूरित हो-होकर व्योम
कर रहा था बहुधा उत्पात ।
न सकता था पाहन - उर देख
धरातल का वर्द्धित उत्पात ।
किसी अविचिंत्य शक्ति की ओर
लगे थे जन आशा के नेत्र ।
हो गया इसी समय सुविकास ;
हुआ उद्‌बुद्ध शांति का क्षेत्र ।
सामने आया भव अनुकूल
एक विभु वैभव लोक-ललाम ।
कांत - वपु, जानु-विलंबित - बाहु,
कमल-दल-नयन, नीर-धर-श्याम ।
वह पुरुष था मानवता - मूर्ति
सत्य - संकल्प, सिद्धि - आधार ।
प्रेम - अवलंब, भक्ति - सर्वस्व,
नीति-निधि, मर्यादा - अवतार ।
वदन पर थी उसके वह ज्योति,
हुआ जिससे जगती-तम दूर ।

देखकर मानस - ओज महान
हो गया कदाचार-मद चूर।
बुद्धि से बँधा सिंधु में सेतु;
खुला कौशल से सुर-पुर-द्वार।
कर परस कर पवि बना प्रसून,
हुआ पग से पाहन-निस्तार।
भरी थी उसमें स्वर्ग-विभूति,
रहा वह सकल-भुवन-अभिराम।
आर्य-कुल - गौरव, गेह - प्रदीप,
दिव्य-गुण-धाम, नाम था राम।

मेरा राम

कला-निधि मंजु माधुरी देख
क्यो न उर-उदधि बने अभिराम।
क्यों न अवलोक मूर्ति कमनीय
कमल-से लोचन हों छवि-धाम।
रमा का पति है मेरा राम।
तप त्रिविध - ताप - तप्त के हेतु
क्यों न दे सुखद जलद-सम काम।
सकल भव-रुज-दव-दग्ध-निमित्त
सजीवन कैसे बने न नाम।
जगत-जीवन है मेरा राम।

ललित लीला है महि आलोक,
सिता-सम है कल कीर्ति ललाम।
सुर-सदन का है सुंदर गान
अलौकिकता - अंकित, गुण - ग्राम।
लोक-रंजन है मेरा राम।
छाँह छू बने अछूत अछूत,
हो गए पतित पूत ले नाम।
पग परस पापी हुए पुनीत,
मिला अधमों को उत्तम धाम।
पतित-पावन है मेरा राम।
कौन है ऊँच, नीच है कौन,
रखो मत इन झगड़ों से काम।
सुनो तुम सबका अंतर्नाद,
किसी का मत अवलोको चाम।
रमा है सबमें मेरा राम।

अवलोकन

नभ-तल, जल, थल, अनल, अनिल में है छवि पाती;
कहाँ कलामय-कला नहीं है कला दिखाती।
रंजित जो रज को न लोक-रंजन कर पाते;
जन - रंजनता सकल कुसुम कैसे दिखलाते।

हरे-हरे तरु-पुंज की रुचिरतर हरियाली;
क्यों करती जी हरा जो न होती हरि-पाली।
क्यों ललामता लिए ललित लतिका लहराती;
जो न त्रिलोक-ललाम ललक लालित कर जाती।
श्यामल, कोमल, नवल तृणावलि तो न लुभाती;
घन-रुचि-तन से जो न रुचिर श्यामलता पाती।
कलित कमल-कुल सदन न कमला का कहलाता;
दल-दल को जो नहीं कमल-दृग कांत बनाता।
तो सकल विभाकर गगन के विभावान होते नहीं;
जो अखिल विभामय जगत में विभा-बीज बोते नहीं।

सबमें रमा राम

मुग्धकर है उसका गुण-ग्राम;
रमा जगती-तल में है राम।
दिवस-मणि में वह दिखलाया,
उसे विधु में हँसता पाया,
अछूते नीले नभ-तल पर
पड़ी है उसकी ही छाया।
मेघ है कैसा सुंदर श्याम।

चाँदनी क्यो खिलती आती,
दामिनी दमक कहाँ पाती,
यामिनी की नीली साड़ी
मोतियों से क्यों ढँक जाती।
जो न होता वह ललित ललाम।

रंग में सबसे न्यारा है,
इंद्र-धनु कितना प्यारा है,
उसी की आभा है उसमें
उसी ने उसे सँवारा है।
उसी का लीलामय है नाम।

उषा का नित्य रंग लाना,
पेड़ पर चिड़ियों का गाना,
वायु का मंद-मंद बहना,
चमकती किरणों का आना,
अलौकिकता का है परिणाम।

ताप क्यो पाहन-उर खोता,
बहाता कैसे रस-सोता,
जीवनी जड़ी-बूटियाँ दे
मेरु-शिर ऊँचा क्यो होता।
जो न बनता कमनीय निकाम।

डालियों में है लहराता,
हरे दल मे है दिखलाता,

कली में है खिलता जाता,
फूल में वह है मुसकाता,
बना क्षिति-तल उससे छवि-धाम।
रसों का रस है कहलाता,
सुधा नभ से है बरसाता,
सर - सरित - लहरों में बिलसा,
मिला कल-कल रव में गाता।
सागरों में है मुक्तादाम।
मंजु छवि मानस में आँकी,
मूर्तियाँ अवलोकीं बाँकी,
मंदिरों में झुक - झुक झाँका,
उसी की दिखलाई झाँकी।
कहाँ है नहीं लोक-अभिराम?
रमा जगती - तल में है राम।

प्यारा राम

कौन है, है जिसे न प्यारा राम!
राम के हम हैं, है हमारा राम।
है दुखी-दीन पर दया करता,
बेसहारों का है सहारा राम।

नब वहीं पर खड़ा मिला न किसे,
जब जहाँ पर गया पुकारा राम।

है सभी जीव जुगुनुओं - जैसे,
है चमकता हुआ सितारा राम।

है समझ - बूझ शीश का सेहरा,
सूझ की आँख का है तारा राम।

हैं जहाँ सत - हस पल पाते,
मानसर का है वह किनारा राम।

है मनो में बसा हुआ सबके,
है दिलों का बड़ा दुलारा राम।

छू गए पाप - फूस है फुँकता,
है दहकता हुआ अँगारा राम।

भूत सिर का उतर सका जिससे,
है सयानो का वह उनारा राम।

तर गए लोग धुन सुने जिसकी,
साधुओं का है वह दुतारा राम।

हमारा राम

ताकते मुँह रहे तुम्हारा राम!
पर न तुमने हमें उबारा राम!

हम थके, तुम पुकार सुन न सके,
कब न हमने तुम्हे पुकारा राम!
मन गया हार बेसहारे हो,
पर न तुमने दिया सहारा राम!
सच है यह, हम सुधर नहीं पाए,
क्यो नही तुमने ही सुधारा राम?
आँख से हम उतर गए, तो क्या,
तुमने जी से है क्यो उतारा राम?
हाथ तुमने किया नही ऊँचा,
हाथ हमने न कब पसारा राम?
किस तरह काम तब सॅवर पाते,
जब कि तुमने नहा सँवारा राम?
क्या रहा, पत बची-खुची न रही,
अब तो सब कुछ सरग सिधारा राम!
देख बेचारपन हमारा यह,
सच कहो, तुमने क्या विचारा राम!
तुम सुनोगे न, तो कहे किससे?
दूसरा कौन है, हमारा राम!

लोक-रहस्य

अलौकिक गान

धरा-कालिमा रही रुधिर से धुलनेवाली;
भव-करालता देख किलकिलाती थी काली।
त्रिपुल - मनुज - वध श्रेय - बीज था बोनेवाला;
मंगल - मूलक महासमर था होनेवाला।
शिव - मुंड-माल की कामना मूर्तिमान थी हो रही।
धीरे - धीरे थी वसुमती बची धीरता खो रही।
काल-भाल का बंक अंक था विपुल कलंकित;
लोक-पाल थे चकित, सकल सुरपुर था शंकित।
बनी धीर-गंभीर विश्व की शक्ति खड़ी थी;
भुवन-विजयिनी भूति भ्रांति-निधि-मध्य पड़ी थी।
थे कान कमलभव के खड़े, यम कपाल था ठोंकता;
भव किसी अलौकिक वदन को था आकुल अवलोकता।
इसी समय कर सकल अवनि-मंडल को मुखरित
एक अलौकिक गान हुआ विज्ञान - गौरवित।

स्वर-लहरी थी सरस, मधुर ध्वनि मुग्धकरी थी;
अति अनुपम थी तान, ललित लय सुधा-भरी थी।
पावन-पदावली थी परम-पद-पावनता-पालिका;
कमनीय-कला थी पय-सलिल विमल-विवेक मरालिका।
सुन यह मोहक गान विमोहित हुए त्रिशूली;
वीणा-वादन-रता करज-सचान भूली।
विधि-विमुग्धता बढ़ी, बिधा नारद का मानस;
बरस गया सुर-सिद्ध-वृंद पर परम मधुर रस।
स्वर-राग-रागिनी के सधे, साधें भरीं अतीत में;
आई सजीवता सरसता सकल लोक-संगीत में।
कर मुरली का नाद मोहिनी जिसने डाली,
मन-मंदिर मे पून-प्रेम-प्रतिमा बैठाली।
जगती-तल को मोह-मोहकर मधु बरसाया;
सुर, नर, मुनि क्या, खग-मृग तक को मुग्ध बनाया।
उसके पावनतम कंठ से कढ़े अलौकिक गान यह;
सारे अशांतिमय ओक में गया शांति का स्रोत बह।
टली भ्रांत की भ्रांति, प्रफुल्लित भव दिखलाया;
परम कलित हो गई समर की अकलित काया।
रुधिर-धार से सिंची लोक-हित-बेलि निराली;
करवालों से गई शांति-ममता प्रतिपाली।
मानव-मानस की मत्तता क्रांति महत्ता से भरी;
भुव-भार-भूत-संहार-मिष भव-विभूति बन अवतरी।

है अतीत का कंठ आज भी उसे सुनाता;
बना-बना बहु मुग्ध स्वर्ग-रस है बरसाता।
स्वर-सप्तक है समय-विपंची में सरसाता;
अवसर पर जन-श्रवण-रसायन है बन जाता।
करता है मानव-धर्म के भावों का एकीकरण;
उसके अपूर्व आलाप से परिपूरित वातावरण।
देश-काल-अनुकूल सदाशयता में ढाले;
सुने धरा के विविध धर्म-संगीत निराले।
किंतु नहीं वह कलित कला उनमें दिखलाती,
जो बन पाती अखिल लोक की प्रियतम थाती।
इतनी ऊँची कब उठ सकी उनकी स्वर-लहरी ललित,
जिसके बल से सब अवनि-तल-हृत्तंत्री होती ध्वनित।
मानवता की मंजु गूँज जिसमें न समाई;
समता की गिटकिरी मधुर जिसमें न सुनाई।
जो कर कर रस-दान सरसता नहीं दिखाता;
घन-समान बन सकल धरातल-जीवन-दाता;
जो देश-जाति द्विविधा-जनित मानस-मल धोता नहीं,
वह विदित धर्म संगीत हो सार्वभौम होता नहीं।
जिसकी ध्वनि में विश्वबंधुता ध्वनि हैं पाते,
हैं जिसके आरोह लोक-ममता में माते,
जिसका प्रिय अवरोह भुवन-मानस-विजयी है,
जिसकी महिमा-भरी मूर्च्छना मुक्तिमयी है,

जिसकी रंजनता अवनि-जन-रंजन एक समान है,
वह गीता का भव-धर्म-धन परम अलौकिक गान है।

नियति-नियमन

नहीं जब रहता रंजन-योग्य
तमोमय रजनी का संभार,
राग-रंजित ऊषा उस काल
खोलती है अनुरंजन-द्वार।
नहीं जब रह जाता कमनीय
तारकावलि तम-मोचन-काम,
दमकता है तब दिव के मध्य
दिवस-मणि सा मणि लोक ललाम।
बहुत जब कर देता है तप्त
धरा को तप-रितु का उत्ताप,
तपन-भय कर देता है दूर
पयद तब बरस सुधा-सम आप।
मलिनतामय बन गए दिगंत,
बढ़ गए जल प्लावन का त्रास।
बनाता है भूतल को भव्य
समुज्ज्वल सुंदर शरद-विकास।

बहुत कंपित करता है शीत
जब शिशिर को दे शक्ति महान,
जब हुए परम प्रबल हिम-पात
अवनि-तल बनता है हिमवान।

दलकने लगते हैं सब लोग,
काँप जब उठता है संसार,
मंद पड़ता है जीवन-स्रोत,
विशिख-विरहित बनता जब मार।

तब लिए कर में कुसुम-समूह,
मलय-शिर पर रख सौरभ-भार,
उमगता आता है ऋतुराज
कर नवल-जीवन का सचार।

कभी होने लगता है लाल,
कभी नभ-तल रहता है नील,
समय पर होता है भव-कार्य,
नियति है कितनी नियमनशील।

प्रेमा

उषा राग अनुराग रंग में है छवि पाती;
रवि की कोमल किरण जाल में है जग जाती।

रस बरसाती मिली कला-निधि कला सहारे ;
पाकर उसकी ज्योति जगमगाते है तारे।
है वह उज्ज्वल कांति कौमुदी उससे पाती ;
जिसके बल से तिमिरमयी को है चमकाती।
इंद्र-चाप की परम रुचिर रुचि में है लसती ;
है विकास मिस कलित भूत कलिका में हसती।
मलयानिल के बड़े मनोहर मृदुल झकोरे ;
सरि, सर, सरसी तरल सलिल के सरस हिलोरे।
पल उसके कमनीय अंक में है कल होते ;
मधुर भाव के मंजु बीज उर मे है बोते।
है वसंत के विभव पर पड़ी उसकी छाया ;
इसीलिये वह किसे नहीं कुसुमित कर पाया।
वह अमोल रस उसे पुंज पादप है लेते ;
जिसके बल से परम रसीले फल है देते।
कर कर सुधा-समान मधुर सागर-जल खारा ;
धर घन-माला-रूप सींचती है थल सारा।
ओस-बूँद बन कुसुम-अवलि में है सरसाती ;
नहीं कहाँ पर प्रेममयी प्रेमा दिखलाती।

मयंक

टूटते रहते हो, तो क्या,
क्या हुआ घटने-बढ़ने से;
मान किसने इतना पाया
किसी के सिर पर चढ़ने से।

घूमते हो अँधियाले में,
तुम्हें रजनीचर कहते है;
पर बता दो यह, किसका मुँह
लोग तकते ही रहते है।

कलंकी तुम्हें लोग कह लें,
तुम्हीं आँखों में बसते हो;
भले ही हों तुम पर धब्बे,
किंतु रस तुम्हीं बरसते हो।

किसे वह मुग्ध नहीं करता,
पास जिसके मधु-धारा हो;
सुधाकर तुम कहलाते हो,
क्यों न विष बंधु तुम्हारा हो।

मोहता ही रहता है जो,
किस तरह मन उससे फेरें ?
घूमते तुम हो आँखों में,
भले ही घन तुमको घेरें।

सदा चक्कर में रहते हो;
दिवस में हो मलीन बनते;
पर तुम्हीं अवनी-मंडल पर
ज्योति का हो वितान तनते।

दिव्यता किसकी अवलोके
तरंगित तोयधि दिखलाया;
राहु कवलित कर ले, तो क्या?
कौन राका-पति कहलाया?

रचा किसने रवि-किरणें ले
चाँदनी का मंजुलतम तन;
लोग दोषाकर बतलावें,
पर तुम्हीं हो रजनी-रंजन।

नर-नारी

देख चंचलता चपला की
गरजते मेघों को पाया;
बिखर जाती है घन-माला,
वायु का झोंका जब आया।

देख करके रवि को तपता
द्रुमों में छिपती है छाया।

चंद्रमा के पीछे - पीछे
चाँदनी को चलते पाया।

गोद में गिरिगण के बैठी
घाटियाँ शोभा पाती हैं ;
दौड़ती जा करके नदियाँ
समुद्रों में मिल जाती हैं।

अंक में उपवन के विरची
क्यारियाँ कांत दिखाती हैं ;
पादपों के सुंदर तन में
बेलियाँ लिपटी जाती हैं।

साथ जलते दीपक का कर
बत्तियाँ जलती रहती हैं ;
सितम मतवाले भौरों का
तितलियाँ सहती रहती हैं।

मोतियों की माला अपनी
भोर को रजनी देती है ;
अरुण का मुख देखे ऊषा
माँग अपनी भर लेती है।

देख कुसुमाकर को कोयल
गीत है बड़े मधुर गाती ;
मंजु मलयानिल से मिलकर
महँक है मोहकता पाती।

सामना उजियाले का कर
भाग जाती है अँधियाली;
गगन-तल के नीलापन में
विलसती रहती है लाली।

फूल को हँसता अवलोके
कब नही कलियाँ खिल जाती;
कलेजा उनका तर करने
ओस की बूँदें है आतीं।

रंगतों से तारक-चय के
ज्योति रंजित बन जाती है;
देख राका-पति को निकलां
बिहँसती राका आती है।

अंतर्नाद

असार जीवन

किसको अपना प्यार दिखाऊँ,
किसको गूँधा हार पिन्हाऊँ,
कैसे बजा सुनाऊँ किसको मानस-तंत्री की झनकार।
थे पादप फूले न समाते,
थे प्रसून विकसे सरसाते,
थे मिलिंद प्रमुदित मधुमाते,
थे विहंग कल गान सुनाते,
यह विलोक उपवन मे आई, खोजा, मिला न प्रेमाधार।
देख पवन को सुरभि वितरते,
कुसुमित महि में मंद विचरते,
झरनो को उमग से झरते,
जल-प्रवाह को मानस हरते,
मोह गई, पर हुआ नयन - गोचर न मनोहरता - अवतार।
मिले विलसते नभ में तारे,
जगमग करते ज्योति सहारे,

उदित हुआ वर विधु छवि धारे,
सुधा-सिक्त कर-निकर पसारे,
पर न बताया पता, कहाँ है वह त्रिलोक-सुंदर, सुकुमार।
खुले न हृदय-युग-नयन मेरे,
वर विवेक आ सका न नेरे,
रहे मोह-मद-ममता घेरे,
बने न चारु भाव चित-चेरे,
सकल सहज सुख-साध न पूजी, सारा जीवन हुआ असार।

विरह-निवेदन

नही खुल पाया तेरा द्वार;
कान में पड़ पाई न पुकार।
नहीं दया कर तूने देखी आकुल नयनों की जल - धार।
सुख हैं सुर-तरु-तले न पाते;
प्यासे सुर-सरि-तट से जाते।
होते सुधा-गेह से नाते;
है चकोर-सम आग चबाते।
शीतल नही हमें कर पाता मलय - समीर-सरस-संचार।
सरसित कुसुमाकर के होते;
मरु-सम हैं न विरसता खोते।

बहते सरस सुधा के सोते ;
है जल-हीन मीन बन रोते ।
नंदन - वन में नहीं सुनाती मानस - अभिनंदन - झंकार ।
जलद-जाल है जल बरसाता ;
चातक है दो बूँद न पाता ।
मधु हो पादप-वृंद विधाता
है करील को क्यों कलपाता ।
तरल-हृदय-तोयद क्यों भूला प्रीति-मत्त मोरों का प्यार ।
कैसे रवि को कमल तजेगा ;
अलि कुसुमावलि को न भजेगा ।
मधु-निमित्त क्यों तरु न सजेगा ;
स्वर-विहीन क्यों वेणु बजेगा ।
प्रेमिक जीव जिएगा कैसे तजे प्रेम - पय - पारावार ।

उपहार

मंजुल - मानस- नंदन-वन में परम-रुचिर-रुचि के अनुकूल
तोड़े हैं अनुरक्ति-करों से भावो के अति सुंदर फूल ।
है ये नव-मरंद के मंदिर पारिजात - से सौरभवान ;
कोमल-अमल-कमल-दल जैसे सरसित - सरस-प्रसून - समान ।
चिंता - चारु - सूत्र के द्वारा उनसे रचा मनोहर हार ;
हीरक-मंजु-माल-सा मोहक मुक्तावलि-सा लसित अपार ।

किंतु हमें वह मिला न मानव, जो हो मानवता-अवतार ;
पड़कर जिसके कलित कंठ में हो न हार-गौरव-संहार।
सरस हृदय है रस के लोलुप, रसिक रसिकता में है चूर ;
भूरि-भाव से भूखे भावुक है भावुकताओं से दूर।
योग, वियोग, मत्त जन-मन है, भोगी भोगों का है दास ;
विविध विलासमयी अभिरुचि है हास-विलासों का आवास।
मधुकर की मधु मादकता है नहीं माधुरी के अनुकूल ;
सुंदर-सरस-मधुर फलवाले हैं रसाल-से नहीं बबूल।
मुक्ता-मोल कोल क्या जाने, है न काक के पिक-से बोल ;
है न कुंद खिलते कमलों-से, है न कनक-सा कनक अमोल।
सोच यही मैं सका न पहना किसी कंठ में अपना हार ;
किसी कमल-कर में न पड़ा वह बना न कुल ललना-शृंगार।
निरवलंब-अवलंब तुम्हीं हो, इसे तुम्हीं लो प्रेमाधार !
अकमनीय, कमनीय, सरस हो या असरस हो यह उपहार।

धूल

धूल बनी हूँ, धूल रहूँ मैं, बदले बनूँ विमोहक फूल ;
सुरभित कर-कर सरस पवन को मधुप मधुपता सकूँ न भूल।
अथवा नवल दूब-दल बन-बन खोलूँ दृगरंजन का द्वार ;
मुक्ता मंजु ओस-बूँदें ले विरचूँ परम मनोहर हार।

सकल-लोक-लोचन जब आवें निज कर प्रातःकाल पसार ;
तो मै विपुल पुलक-पूरित हो अर्पण करूँ प्रेम-उपहार।
श्यामल, ललित तृणावलि हो-हो सज्जित करूँ अवनि का अंक ;
कर सेवा बहुप्राणिपुंज की हरती रहूँ कपाल - कलंक।
यदि वियोग-विधुरा के आँसू तज मंजुल अनमोल कपोल
बूँद-बूँद मुझ पर निपतित हों भूल-भूल मोती का मोल,
तो मै उनसे विपुल सरस हो सरसित करूँ अंकगत बेलि,
जिनके कलित ललित किसलय में हो कमनीय कामना-केलि।
ऊँचे उठे भूतभावन के तन की बनूँ पुनीत विभूति,
जिसे विलोक लोक को होवे भव - महानुभवता - अनुभूति।
नीचे रहे लोक-पावन के पद-पंकज का बनूँ पराग,
जिससे विदित जगत को होवे पूजित पग-सेवन-अनुराग।
पद-प्रहार सह पतित कहाऊँ, पर न बनूँ जन-लोचन-शूल ;
कंटक-कुल-जननी न कहाऊँ, हो न सकूँ महि के प्रतिकूल।
मै हूँ तुच्छ, ज्ञान-विरहित हूँ, है न सहजतम सुंदर बोध ;
किंतु सकल जगतीतल-जीवन वांछित है, न अन्य अनुरोध।

मनोव्यथा

बिछा है कूट-नीति का जाल,
कलह-कलकल है चारो ओर ;

कालिमामय मानस का मौन
मचाता है कोलाहल घोर।
मंजु-पथ - मग्न सरोवर - हंस
बन गया परम कुटिल वक्र-काक ;
जहाँ था पावन प्रेम - प्रवाह,
वहाँ है प्रबल पाप - परिपाक।
न करते हैं पुनीत रस - दान
सुर-सरित में विकसे अरविंद ;
बसा है रच मायावी वेश
देव - सदनों में दानव - वृंद।
अधिकतर है प्रतिहिंसा-धाम,
गरलमय है उसका आधार ;
जाति वैसी ही है निर्जीव,
सुधा-धारा है नही सुधार।
स्नेह का मृदुल, मंजुतम सूत्र
हुआ कटुता - पटु कर से छिन्न ;
अनय का सह-सह प्रबल प्रहार,
हित - सदन होता है उच्छिन्न।
जलन जी की ज्वालाएँ फेंक
लगाती है घर-घर में आग ;
वमन करती है गरल अपार
लाग बन - बनके काला नाग।

कुटिल-गति, विष-वदना, विकराल
साँपिनी-सी है उनकी नीति;
लाभ कर जो भव भूरि विभूति
दूर करते भारत की भीति।

जाति के जो हैं जीवन-मंत्र,
सफलतामय है जिनका गात,
उन्हीं पर घिरे मोह का मेघ,
हो रहा है पल-पल पवि-पात।

पड़ी है भूल-भँवर में आज,
चल रहा है प्रतिकूल समीर;
डगमगाती है सुख की नाव,
दूर दिखलाता है सरि-तीर।

स्वर्ग-से नगर हो गए ध्वंस,
मिल गए रज में कंचन-धाम;
ललिततम लीलाओं की भूमि
काल-वश रही न लोक-ललाम।

हृदय-वेदना

हो रहा है गो-धन विध्वंस,
कलपते है पय को कुल-लाल;

किसलिये गया सर्वथा भूल
गौरवित गोकुल को गोपाल !
भर गई दानवता सब ओर,
बने मन मद-वारिधि के मीन
मनुजता-श्रुति को कर रस-सिक्त
बजी मुरली मुरलीधर की न।
लोक लोलुपता में है लीन,
हो गया दूना दुख-संदोह ;
बन गई अवनी महा मलीन,
तजा क्यो मनमोहन ने मोह।
हो रहा है पल-पल पवि-पात,
बन गया काल-वदन विकराल ;
कलंकित हुए सकल अकलंक,
कहाँ है आज कंस का काल।
हुआ जन-जन-जीवन रस-हीन,
सरसता नही श्याम अवदात ;
विरस हो चली कामना-बेलि,
वारि बरसा कब वारिद गात।
कर रहा है कलि-काली-नाग
गरलमय रुचि रवि-तनया-धार ;
कर सका दूर नहीं दुख-द्वंद
लोक-अभिनंदन नंदकुमार।

गिरे है दुख-जल-मूसल-धार,
घिरे परिताप-घन-जलद-जाल ;
न अब तक सदय भाव गिरिराज
कर सका धारण गिरिधर लाल !
कराता है पल - पल अपकार
परम अपकारी का अहमेव ;
हुई क्यों दया दयामय की न,
हुआ क्यों द्रवित नहीं व्रज-देव ।
महाभव-बंधन सका न टूट,
हो गई मोहमयी मति कुंद ;
गया है भूल मुक्ति का मंत्र,
मुक्त करता क्यों नहीं मुकुंद ।
तजी क्यों विपद-विमोचन-बान,
नहीं खुलते लोचन-अरविंद ;
हुआ खल-वृंद बहु प्रबल आज,
देश को भूला क्यों गोविंद ।

जातीय संगीत

विशाल भारत

विधि - कांत - कर-सँवारा,
संसार का सहारा,
जय - जय विशाल भारत,
भुवनाभिराम प्यारा।

वर - वेद - गान - मुखरित,
उन्नत, उदार, सुचरित,
बहु पूत भूत पूजित
अनुभूत मंत्र द्वारा।

सुर - सिद्ध - वृंद - वंदित,
नंदन - वनाभिनंदित,
आनंद - मान्य - मंदिर,
सिंधुर-वदन सुधारा।

जल-निधि-सुता-सुलालित,
सुरसरि - सुवारि - पालित,
जग - वंदिनी गिरा - गृह,
गिरिनंदिनी उबारा।

रवि-कर - निकर - मनोहर,
विधु-कांति - कल - कलेवर,
सब दिव्यता - निकेतन,
दिवलोक का दुलारा।

मानस - सलिल - मनोरम,
मंजुल, मृदुल, मधुरतम,
कंचन - अचल - अलंकृत,
भव-व्योम-भव्य-तारा।

सुंदर - विचार - सहचर,
सब रस परम रुचिर सर,
शुचि-रुचि -निकेत-केतन,
वर भाव कर उभारा।

सज्जन - समाज - पालक,
दुर्जन - समूह - घालक,
निर्बल - प्रबल - सहायक,
खल-दल-दलन-दुधारा।

सारी सुनीति - नायक,
जन-मुक्ति - गान- गायक,
सब सिद्धि चारु साधन,
सुख-साध-सिद्ध पारा।

नव-नव-विकास-विकसित,
मधु-ऋतु-विभूति-विलसित,
मलयज - समीर - सेवित,
सिंचित-पियूष - धारा।

कुवलय-कलित सितासित,
खग-कुल-कलोल-पुलकित,
सज्जित वसुंधरा का
सौंदर्य - साज सारा।

कमनीयता - निमज्जित,
मणि-मंजु - रत्न - रंजित,
अवनी - ललाट - अंकित
सिंदूर - बिंदु न्यारा।

मन्त्र-साधन

सिद्धि-साधना

कैसा आया समय, बदला काल का रग कैसा,
होती जाती भरत-भुवि की आज कैसी दशा है ;
आँखें खोलें विबुध, समझें देश की सर्व बातें,
सोचें होके प्रयत, युग के धर्म का मर्म क्या है।
आशा होवे उदय उर में, दूर नैराश्य होवे,
सूझें सारे सुपथ, सफला युक्तियाँ हों हमारी ;
ऐसे बाँधे नियम, जिससे कालिमा दूर होवे,
आभावाले सकल दृग हों, ज्योति फैले जनों में।
प्यारी संख्या प्रतिदिवस है जाति की न्यून होती,
संतप्ता हो दुख-उदधि में मग्न जातीयता है ;
छीने जाते हृदय-धन हैं, पत्नियाँ छूटती हैं,
सोने-जैसा सुख-सदन है प्रायशः दग्ध होता।
ढाहे जाते सुर-सदन हैं, मूर्तियाँ टूटती हैं,
बाधा होती अधिकतर है पर्व औ' उत्सवों में ;

काँटे जाते प्रथित पथ में चाव से हैं बिछाए,
न्यारी शोभा - रहित नित है नंदनोद्यान होता।
की जाती है विफल छल से सिंधुजा की कलाएँ,
टूटी-सी है परम मधुरा भारती की सुवीणा;
क्रीड़ा द्वारा कलुषित बनी मंजु मंदाकिनी है,
लूटा जाता धनद-धन है, स्वर्ग है ध्वंस होता।
तो भी होता कलह नित है, वैर है वृद्धि पाता,
सद्भावों के सुमन-चय में है घुसे दंभ-कीट;
सच्चिता की ललित लतिका हो गई छिन्न-मूला,
उल्लासों के विपुल विटपी पुष्प ही हैं न लाते।
धर्मों की है निपतित ध्वजा, सभ्यता वंचिता है,
है शास्त्रों की सबल विधियाँ रूढ़ियों से विपन्ना;
सत्कर्मों की प्रगति बदली लोक-आडंबरों से,
मोहों द्वारा बहु मथित हो आर्यता मूर्च्छिता है।
वेदों की है अतुल महिमा, मंत्र हैं सिद्धि-मंत्र,
धाता-जैसी सृजन-पटु हैं उक्तियाँ आगमों की;
भूविख्याता पतित जनता - पावनी जाह्नवी है,
आर्यों के हैं सुअन, हममें कौन-सी न्यूनता है।
सच्ची शिक्षा सतत चित की उच्चता है सिखाती,
सद्वांछा है विदित करती—त्याग संकीर्णता दो;
उद्बोधों के विपुल मुख से है यही नाद होता—
जागो-जागो, कटि कस उठो, काल की क्रांति देखो।

जो लोहू है गरम, यदि है गात में शेष शक्ति,
जो थोड़ी भी हृदय - तल में धर्म की वेदना है;
हो जाता है चित व्यथित जो जाति - उत्पीड़नों से,
तो हो जाओ सजग, सँभलो, सिद्धि का मंत्र साधो।

त्याग

भयंकर - भाव - विभव - अभिभूत,
स्वार्थ - तम - तोम - आवरित ओक,
लाभ करता है ललित विकास
त्याग - रवि तेज - पुंज अवलोक।
गृह - कलह-बेलि कठोर कुठार,
जाति - गत वैर - पयोद समीर,
निवारण - रत समाज - संताप
त्याग है सुरसरि शीतल नीर।
कालिमामय जिसका है अंक,
तिमिर - मज्जित है जिसका गात,
उस कुमति - रजनी का है त्याग
राग - अनुरंजित दिव्य प्रभात।
हो रहा है जिसके प्रतिकूल
काल का प्रबल प्रवाहित स्रोत,

दुख-जलधि-निपतित है जो देश
त्याग है उसका अनुपम पोत।

सुजनता सरसी सुंदर वारि,
संत मत कलित कपाल सुअंक,
त्याग है सुरुचि - कमलिनी भानु,
साधुता - राका - निशा - मयंक।

मुग्ध होता है मानस - भृंग,
मिले उसका कमनीय सुवास,
बनाता है उर - सर को मंजु
त्याग सरसिज का सरस विकास।

सदा सुख - पय करता है पान,
चल अवनि-जन-मन-रंजन चाल,
चुग रुचिर गौरव - मोती चारु,
नारि - मानस - गत त्याग-मराल।

बरसता है गृह - सुख वर - वारि,
प्राणि-शिखि-कुल को वितर विनोद,
पति प्रमुद सर को कर रस-धाम,
नारि - जीवन - नभ त्याग - पयोद।

बना दंपति-सुख-तरु को कांत,
कर कलह - पीत - विपुल-दल अंत
सजाता है सनेह उद्यान,
नारि-उर विलसित त्याग-वसंत।

मुक्तिमय सुन जिसकी झंकार,
बने कितने परतंत्र स्वतंत्र,
भरित जिसमें है पर-हित-नाद,
त्याग वह है वर-वादन-यंत्र।

सफलतामय है साधन - सूत्र,
अमायिकता है जिसका तंत्र,
मुग्ध जिस पर है सिद्धि समूह,
त्याग वह है जग-मोहन मंत्र।

विमलतम भाव - मयंक - निकेत,
भूतिमय पूत विभव रवि धाम,
है रुचिर चिंतन - तारक - ओक,
त्याग का नभतल लोक ललाम।

प्रकाशित उससे है पाताल,
प्रभामय है उससे मृत लोक,
सुर-सदन का है रत्न प्रदीप,
त्याग है तीन - लोक - आलोक।

वे समझते हैं उसको बंध,
लोक-हित जिनका है अपवर्ग;
देव-पूजित दधीचि - से सिद्ध
त्याग पर होते हैं उत्सर्ग।

देश - हित-पथ का प्रिय पाथेय,
समुन्नति-निधि का सहज निजस्व,

भव - विपुल-विभव - परम अवलंब,
त्याग है जन - जीवन - सर्वस्व ।

त्याग भूमि

बन गया मूर्तिमान आतंक
बहु प्रबल भूत पाप - परिपाक;
सभ्यता - सूत्र हो गया छिन्न;
धूल में मिली धर्म की धाक ।

किंतु किसके खुल पाए नेत्र,
किया किस जन ने उसका त्राण;
बिंधा किस धर्म - वीर का मर्म,
दिया किस धर्म - प्राण ने प्राण ।

पूजता जिसको निर्जर - वृंद,
अब कलुष-जर्जर है वह जाति;
नरक-दुख - का वह बना निकेत,
स्वर्ग - जैसी जिसमें थी शांति ।

देख, यह कौन हुआ कटिबद्ध,
किया किस जन ने कर्म महान;
हो गया सत्य भाव से कौन
त्याग - बलि - वेदी पर बलिदान ।

जहाँ थे साम्यवाद के सिद्ध,
जहाँ का था स्वतंत्रता - मंत्र;
वहन कर पराधीनता वृत्ति
वहाँ का जन - जन है परतंत्र।

पर इसे कौन सका अवलोक,
आज भी निद्रा हुई न भंग;
न संकट - पोत कर सकी भग्न
त्याग-जल - निधि - उत्ताल तरंग।

लोक - प्रियता है विद्‌लितप्राय,
है प्रबल भूत विविध परिताप;
आर्य - गौरव - रवि है गत - तेज,
काल - कवलित है कीर्ति - कलाप।

खड़े हो सके न तो भी कान,
गर्म हो सका न तो भी रक्त;
रगों में सकी न बिजली दौड़,
हुआ उर शतधा नहीं विभक्त।

हुआ खंडित मणि-मंडित क्रीट,
हो गया छिन्न रत्न - चय - हार;
छिन गया पारस बहु-श्रम-प्राप्त,
लुटा कनकाचल - सम सभार

कर सका कौन आत्म - उत्सर्ग,
किया किसने उर - रक्त प्रदान;

जाति देकर कपाल की माल
कर सकी कब शिव का सम्मान।
देश जिससे बनता है स्वर्ग,
कहाँ है उर में वह अनुराग;
त्यागियों का सुनते हैं नाम,
कहाँ है त्याग भूमि में त्याग।

शिक्षा का उपयोग

शिक्षा है सब काल कल्प-लतिका सम न्यारी;
कामद, सरस महान, सुधा-सिंचित, अति प्यारी।
शिक्षा है वह धरा, बहा जिस पर रस-सोता;
शिक्षा है वह कला, कलित जिससे जग होता।
शिक्षा सुरसरि-धार वह, जो करती है पूततम;
शिक्षा वह रवि की किरण, जो हरती है हृदय-तम।
क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा?
क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा?
क्या अब है वह नहीं दासता-बेड़ी कसती?
क्या न पतन के पाप पंक में है वह फँसती?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में?
क्या बनकर कीट नहीं बसी वह भारत-हित-फूल में?

प्रतिदिन शिक्षित युवक-वृंद हैं बढ़ते जाते;
पर उनमें हम कहाँ जाति-ममता हैं पाते?
उनमें सच्चा त्याग कहाँ पर हमें दिखाया;
देश दशा अवलोक वदन किसका कुम्हलाया?
दिखलाकर सच्ची वेदना कौन कर सका चित द्रवित;
किसके गौरव से हो सकी भारतमाता गौरवित।
अपनी आँखें बंद नहीं मैंने कर ली हैं;
वे कंदीलें लखीं जो कि तम-मध्य बली है।
वे माई के लाल नहीं मुझको भूले हैं;
सूखे सर में जो सरोज-जैसे फूले हैं।
कितनी आँखें हैं लगीं जिन पर आकुलता-सहित;
है जिनकी सुंदर सुरभि से सारा भारत सौरभित।
किंतु कहूँगा काम हुआ है अब तक जितना;
वह है किसी सरोवर की कुछ बूँदों-इतना।
जो शाला कल्पना-नयन-सामने खड़ी है;
अब तक तो उसकी केवल नींव ही पड़ी है।
अब तक उसका कल का कढ़ा लघुतम अंकुर ही पला;
हम हैं विलोकना चाहते जिस तरु को फूला-फला।
प्यारे छात्र-समूह, देश के सच्चे संबल,
साहस के आधार, सफलता-लता-दिव्य-फल,
आप सबों ने की हैं सब शिक्षाएँ पूरी;
पाया वांछित ओक दूर कर सारी दूरी।

अब कर्म-क्षेत्र है सामने, कर्म करें, आगे बढ़ें;
कमनीय कीर्ति से कलित बन गौरव-गिरिवर पर चढ़ें।
है शिक्षा-उपयोग यही जीवन-व्रत पालें;
जहाँ तिमिर है, वहाँ ज्ञान का दीपक बालें।
तपी भूमि पर जलद-तुल्य शीतल जल बरसें;
पारस बन-बन लौहभूत मानस को परसें;
सब देश-प्रेमिकों की सुनें, जो सहना हो वह सहें;
उनके पथ में काँटे पड़े हृदय बिछा देते रहें।
प्रभो, हमारे युवक-वृंद निजता पहचानें;
शिक्षा के महनीय मंत्र की महिमा जानें।
साधन कर-कर सकल सिद्धि के साधन होवें;
जो धब्बे हैं लगे, धैर्य से उनको धोवें।
सब काल सफलताएँ मिलें, सारी बाधाएँ टलें;
वे अभिमत फल पाते रहें, चिर दिन तक फूलें-फलें।

शक्ति

जिसे है मानवता का ज्ञान,
नहीं पशुता से जिसकी प्रीति;
बिना त्यागे विनयन का पंथ
लोक-नियमन है जिसकी नीति।

क्रोध जिसका है शांति - निकेत,
लोभ जिसका लालसा - विहीन ;
मोह जिसका है महिमावान,
काम जिसका अकामनाधीन।

न मद में मादकता का नाम,
न तन में अतन - ताप का लेश ;
रूप जिसका है लोक-ललाम,
अवनि - रंजन है जिसका वेश।

न मस्तक पर कलङ्क का अंक,
न जिसका लहू भरा है हाथ ;
बिहरती रहती है सब काल
लोक - लालमता जिसके साथ।

जलद-सम कर जन-जन को सिक्त,
रस बरसती जिसकी अनुरक्ति ;
भरा है जिसमें भव का प्यार,
वही है विश्व-विजयिनी शक्ति।

प्रकृति-प्रमोद

मधु-मत्त

नया रस भव में सरसाया ;
छलककर छिति-तल में छाया।
सरस होकर रसाल बौरे,
बनी किंशुकता मतवाली ;
लाल फूलों में विलसित हुई
मत्त करनेवाली लाली।
लता-दल पुलकित दिखलाया।
फूल हैं मुँह खोले हँसते,
विकसती जाती हैं कलियाँ,
धरा को मादकता से भर
मना हैं रहे रंगरलियाँ।
देख कुसुमायुध ललचाया।
झूमते - झुकते हैं भौरे,
घूमते हैं मतवाले बन ;

गूँजते हैं नव मधु पीकर,
चूमते है कुसुमों का तन।
सग भ्रमरी का है भाया।
कूकता है निशि-दिन कोकिल,
दिशा है कलित काकलीमय;
समद है मंद-मंद बहता
मलय-मारुत बन मोद-निलय।
परिमलित कर मंजुल काया।
तरंगें उठीं अखिल उर में
पिए रस आसव का प्याला;
क्यों न हो अनुरंजित मानस,
बन उमग तरु मधुमय थाला।
है सरस समय रंग लाया।

वसंत

चावमय लोचन का है चोर
नवल पल्लवमय तरु अभिराम;
प्रलोभन का है लोलुप भाव,
ललित लतिका का रूप ललाम।
मनोहरता होती है मत्त
मंजरी - मंजुलता अवलोक;

हृदय होता है परम प्रफुल्ल
कुसुम-कुल-उत्फुल्लता विलोक।
कान मे पड़ती है रस-धार
सुने कोकिल का कल आलाप ;
रसिकता बनी सरसता-धाम
देखि अलि-कुल का कार्य-कलाप।
सुरभिमय बनता है सब ओक
हुए मलयानिल का संचार ;
भूरि छवि पा जाती है भूमि
पहन सज्जित सुमनों का हार।
गगन-तल होता है सुप्रसन्न
लाभ कर विमल मयंक-विकास ;
विहँसती सित-वसना, सित-गात
सिता आती है भूतल-पास।
भव मधुर नव-जीवन-आधार,
लोक-कमनीय विभूति-निवास ;
है प्रकृति-नवल-वधू-शृंगार
सुविलसित सरस वसंत-विलास।

मधुर विकास

गगन-तल क्यों निर्मल हो गया ?
नीलिमा क्यों है भरित उमंग ?
लोक - मोहन क्यों इतना बना
आज दिन उसका श्यामल रंग।

सभी को कर देने को सरस
किसलिये हुआ चौगुना चाव ;
वारिधर मंजु वारि कर वहन
कर गया क्यों छिति पर छिड़काव।

बहुत क्यो हरा - भरा हो गया
पहन सुंदर फूलों का ताज ;
मोतियों से सजकर है खड़ा
किसलिये नाना विटप-समाज।

बिछाई किसने है किसलिये
रजत-राजित चादर कर प्यार ;
वहन कर निर्मल मंजुल सलिल
क्यों हुए सरि-सर सरस अपार।

किसलिये अनुरंजित बन भूरि
विपुलता से विकसे अरविंद ;
बरसते हैं क्यों सुमन-समूह,
विलसते पारिजात - तरु-वृंद।

चंद्रिका - से हो करके चारु
किया है उसने क्यों शृंगार ;
पहन रजनी ने क्यों है लिया
तारकावलि हीरक का हार।
किसलिये कोने - कोने मध्य
उमड़ता पड़ता है आनंद ;
दिशा है मंद - मद हँस रही
देखने को किसका मुख-चंद।
बनाता है क्यो भू को भव्य
कौन-सा भव का भाव-विलास ;
क्यों कहें, है किसका सर्वस्व
सित शरद का कमनीय विकास।

वर्षाकालिक सांध्य गगन

संध्या काल विरल घनावृत गगन
जहाँ - तहाँ पुंजीभूत अंजन अपार ;
तिरोभूत विंदुपात मंदीभूत वायु,
हो चुका था बंद वृष्टि अवारित द्वार।
अस्तप्राय दिनमणि मंजु अंशु-जाल,
विरच रहा था बार-बार बहु चित्र ;

सुषमा-सदन ले-ले छिन्नभूत घन
नाना केलि करता था बनके विचित्र।
उस काल अवलोक वारिवाह - व्यूह
सुरजित आलोकित बहु वर्ण गात;
होता था विदित खुले विबुध विमान
नाना रूप नाना रंग नाना अवदात।
कभी होता अवगत अमर-कुमार,
उमग उड़ा रहे है विविध पतग;
अथवा विशाल व्योम वारिनिधि - मध्य
विलस रही है बहु उत्ताल तरंग।
सोचता कभी था चित्त, सुखाने के लिये
फैलाए गए हैं लोक-सुंदरी के पट;
किंवा हुए प्रदर्शित प्रमोद सदन
किसी चित्रकार के प्रचुर चित्रपट।
ऐसे हैं प्रतीत होते, मोहते है मन
घन के किनारे हो-हो किरण-कलित;
मानो सारी प्रकृति-वधूटी की असित
लैस के लगाए बनी बड़ी ही ललित।
कभी बहुरंजित विरच इंद्र-धनु
घन को पिन्हाती रत्न-खचित मुकुट;
किरण सँवारती दिगंगना - वसन
कभी दे-दे सप्तरंग द्वारा दिव्य पुट।

पा के उसे बनता था पुरहूत-चाप
स्वर्ग - द्वार - विलसित सुबंदनवार;
रंगिणी कादंबिनी सुलालित सुअन
लोक - कमनीयता - कामिनी का शृंगार।

पश्चिम दिशा में दिव्य दीर्घकाय घन
हो-होकर कनकाभ - किरण - कलित
बनता था प्रज्वलित पावक-समान,
किंवा किसी स्वर्गिक विभूति से वलित।

उसे अवलोक यह होता था विचार,
हुई है प्रतीची जात रूर से जटित;
अथवा कनक - मेरु कांततम बन
हुआ है क्षितिज मंजुता में प्रकटित।

अंत हुए दिवस चिता की जगी आग,
किंवा हुआ एकत्रित विद्युत-विकाश;
तमोमयी रजनी समागत विलोक
किंवा केंद्रीभूत बना परम प्रकाश।

अंकगत दिवामणि अस्त अवलोक
प्रतीची - हृदय ज्वाला हुई प्रस्फुटित;
अथवा सहस्रकर - सहाय - निमित्त
दिवलोक दिव्य आभा हुई संघटित।

अथवा है यह वह आलोक - भांडार,
आलोकित जिससे है मेदिनी का अंक;

पाके जिसे द्युतिमान बने है खद्योत,
जिसकी विभा से विभावान है मयंक।
काले घन - दनुजात - दहन - निमित्त
रवि ने चलाए है अमित अग्नि-बाण;
अथवा त्रिदश समवेत तेजःपुंज
करता है व्योम रमणीय मणि त्राण।
रमा का है रत्न - कांत कनक - भवन,
किंवा है दमकता प्रकृति - भव्य - भाल;
विकसा गगन-सर में है स्वर्ण-पद्म,
किंवा किसी ज्वालामुखी की है ज्वाल-माल।

पारिजात

बड़े मनोहर हरे-हरे दल किससे तुमने पाए है?
तुम्हे देखकर के मेरे दृग क्यो इतने ललचाए है?
कहाँ मिल गए इतने तुमको, क्यो ए इतने प्यारे है?
किसके सुंदर हाथो के ए सुंदर फूल सँवारे हैं?
जब सित, पीत रंग के खिलते फूल तुम्हे मिल जाते है,
जब निखरी हरियाली मे ए अपनी छटा दिखाते है,
तब किसको है नही मोहते, किसको नही लुभाते हैं?
प्याला किसी निराले रस का किसको नही पिलाते है?
मंद पवन को सुरभि दान कर क्यों सुगंध फैलाते हो?
किसके स्वागत के निमित्त तुम भू पर फूल बिछाते हो?

किन कमनीय कामनाओं से सुमनो से भर जाते हो?
क्या शरदागम अवलोकन कर फूले नही समाते हो?
किन रीझों से रीझ रहे हो, क्यो उमंग में आते हो?
अपने अतर्भावों को क्यों कुसुमित कर दिखलाते हो?
क्या प्रिय पावस की सुधि करके परम सरस बन जाते हो?
मजु वारि वे बरसाते, तो तुम प्रसून बरसाते हो।
देख चमकते तारक-चय को निर्मल नील गगनतल में
उनको प्रतिबिंबित अवलोके स्वच्छ सरोवर के जल में।
धारण की है क्या वैसी ही छवि तुमने वसुधातल में
श्वेत-सुमन-कुल को सचय कर निज कोमल श्यामल दल में?
छिटक-छिटक चाँदनी सुधा-रस जब भू पर बरसावेगी,
लोक-रजनी रजनी जब अनुरंजन करती आवेगी,
मद-मंद हँस रसमय बनता जब मयक को पाओगे,
क्या तब उन्हे सुमनता दिखला सुमन-माल पहनाओगे?
जब अनुराग-राग से रंजित होकर ऊषा आती है,
जब विहंग गाने लगते है, नभ में लाली छाती है,
तब क्यों सुमन-समूह गिराकर भूतल को भर देते हो?
क्या रवि का अभिनंदन करके कीर्ति लोक में लेते हो?
जिस धरती माता ने तुमको जन्म दिया, पोसा-पाला,
पिला-पिलाकर जीवन जिसने जड़ तन में जीवन डाला,
क्या उसके आराधन ही को है यह सारा आयोजन?
क्या ले कुसुम-समूह उसी के पग का करते हो अर्चन?

फूल तुम्हारे किसलय के-से कर से सदा चुने जावें ;
वसन किसी के रँगें कंबु-से कंठों मे शोभा पावें,
पारिजात, प्रतिदिन बिखेरती रहे ओस तुम पर मोती ;
पाकर शरद सब दिनों फूलो, दिशा रहे सुरभित होती ।

बहुरंगी फूल (गुल हज़ारा)

इनके-ऐसे नयन विमोहन सुमन कहाँ अवलोके ;
'लोक-ललाम' गात में किसके बसे ललिततम होके ?
इनके-जैसी सहज विकचता मृदुता किसने पाई ;
किसके अंतर में इतनी जन-रंजनता दिखलाई ?
रंग-बिरंगे है इतने, है रंगत इतनी प्यारी,
जिससे विविध कुसुम से विलसित बन जाती है क्यारी ।
किसको नहीं लुभा लेती है लाल फूल की लाली ?
देख अबीरी फूलो को रुचि होती है मतवाली ।
उजले फूलों का उजलापन करता है उजियाला ;
देख गुलाबी फूल छलक उठता है रस का प्याला ।
लाल चिट लगे सित कुसुमावलि दल छवि जब अधिकाती ;
प्रकृति-वधूटी के कर की तब कारु क्रिया दिखलाती ।
इन फूलो में एक फूल जब लाल रंग का खिलता,
तब विनोद-रंगालय में मन नर्तन करता मिलता ।
इस प्रसून का पौधा जब फूलों से है लस जाता,
हरित दलों की हरियाली में जब रंगतें दिखाता,

तब ऐसी क्षितितल - विमोहिनी छटा लाभ है करता,
जिसको देख मुग्ध अलि-सा बन नयन भॉवरे भरता।
यह कुसुमित तरु इंद्र-चाप से चारु रंग है पाता;
या है इंद्र-चाप ही इसकी रुचिकर कांति चुराता।
या पाकर पावस दोनो ही है उमंग मे आते;
गगन-अवनि में होड़ लगाकर है निज समाँ दिखाते।
इनके चारो ओर तितिलियाँ है फिरती दिखलाती;
अथवा इनके निकट निज छटा दिखलाने है आती।
किंवा बार-बार चुंबन कर ए है इनको ठगती?
इनके तन की रंगत ले-ले अपना तन हैं रॅगती।
मोती ले-लेकर के रजनी यदि है इन्हे सजाती?
तो रवि-किरण भोर होते ही मणि-माला पहनाती।
इन्हे समीर प्यार के पलने पर है पुलक झुलाता;
दिनकर अपने कलित करो से प्रतिदिन है रँग जाता।
अवनी इन्हें अक में लेकर फूली नही समाती;
चहक-चहककर खग-माला है सुदर गान सुनाती।
ऐसे अनुपम छविमय सुमनो ने है सुरभि न पाई;
गिने हुए है जीवन के दिन यह कैसी दानाई?
भव की इन प्रवचनाओ को हम कैसे बतलाएँ;
अहह! विधाता की विधि में हैं क्यों ऐसी बाधाएँ?

सूक्ति-समुच्चय

प्रकृत पाठ

प्यारे बालक! नयन खोल सब ओर विलोको;
दिव्य भाव से भरे भव-विभव को अवलोको।
बहु सज्जित तरु-पुंज, फल-भरी उनकी डाली,
परम मनोहर छटा, नयन-रंजन हरियाली,
मंजु रंग मे रँगे सुरभि से मुग्ध बनाते;
विकसे नाना फूल मधुर हँसते, सरसाते।
चित्र-विचित्र विहंग कलित कठता दिखाते;
करते विविध कलोल, गान स्वर्गीय सुनाते।
क्या नयनो मे नहीं ज्ञान की ज्योति जगाते?
क्या कानो में नहीं सुधा-बूँदें टपकाते?
क्या न हृदय की कलिका है उनसे खिल पाती?
रस की धारा क्या न उरो में है बह जाती?
मंद-मंद चल सरस पवन जब है तन छूती,
जब बनती है सुरभि वितर सुरपुर की दूती,
तरु-दल उसके कलित अक में है जब हिलते,
उसके चुंबन किए जब कुसुम-कुल है खिलते,

रज-कण तक में भरी हुई है शिक्षा प्यारी ;
है उसके सब खुले नयनवाले अधिकारी ।

कामना

उपजे महारथी प्रभु कोई ;
हरे भार भारत - भूतल का भूति लाभ कर खोई ।
अनुपम साहस-सलिल-धार से जाय हित-धरा धोई ;
उलहे बेलि अलौकिक यश की विजय-अवनि मे बोई ।
पुलकित बने अपुलकित रह-रह विपुल प्रजा बहु रोई ;
आशा-उषा राग-रंजित हो जागे जनता सोई ।

तंत्री के तार

टूट गए तंत्री के तार ;
रही नहीं अब वह स्वर-लहरी, रही नहीं अब वह झंकार ।
कुसुमोपम मृदु उँगली से छिड़ नहीं बरसते हैं रस-धार ;
हैं प्रदान करते न पवन को मुग्धकरी ध्वनि मधुर अपार ।
है न कान को सुधा पिलाते, हैं न हृदय हरते प्रति बार ;
हैं न सुनाते सरस रागिनी, बनते हैं न सरसता-सार ।
है न उमंगित करते मानस, है न तरंगित चित आधार ;
हैं न बहाते वसुधातल में रसमय उर के सोत उदार ।

मर्म-व्यथा

विखर रहा है चंद हमारा ।
सकल-लोक-मानस-अवलम्बन, जगतीतल-लोचन का तारा ;
राका-रजनि-अंक-अनुरंजन है आवरित निविड़ घन द्वारा ।
है हो रहा अकांत कांत तन बहु नीरस सरसित रस-धारा ;
अधम सिंहिकानदन से है अवनीतल - अभिनंदन हारा ।
सुधा-धाम है सुध-विहीन-सा, मुद-विहीन है कुमुद-सहारा ;
पानिप हीन आज है होता प्रतिपल पाथ-नाथ-सुत प्यारा ।
तदपि गगनतल है न निकंपित, अनुलित व्यथित न कोई तारा ;
अहह रसातल है सिधारता भव वल्लभ, दिवलोक-दुलारा !

सम्मान

बरस जाती है रुचिकर वारि
विनय की मधुर वचन की खोज ;
मिले निर्मल-उर- रवि - कर मंजु
विलसता है सम्मान - सरोज ।
नहीं होता कीने के पास
अछूते आव-भगत का वास ;
बुझी कब विना समादर-ओस
किसी सम्मान-सुमन की प्यास ?
ललित हो क्यों पाता सुविकास
स्नेहमय मधुर मिलन नभ अंक ;

मधुरता - सुधा बरसता कौन
बिना सरसे सम्मान - मयंक ?
दंभ का देखे असरस भाव
ठहरती कैसे सुमति समीप;
क्यों न घिरता अविनय - तम-तोम,
है न बलता सम्मान - प्रदीप।

पड़ी पत्तों - फूलों पर आँख,
मूल को सका न मन पहचान;
क्यों बने सफल कामना - बेलि,
मिल सका नहीं सलिल-सम्मान।

मैं क्या हूँ ?

मैं मिट्टी से हूँ बना, किंतु हूँ सोना,
हूँ धूल, फूल बनकर करता हूँ टोना।
मैं पानी का हूँ बूँद, किंतु हूँ मोती;
मैं हूँ मानव, पर हूँ सुरगुरु का गोती।

मैं मर हूँ, किंतु अमर है मेरी सत्ता;
हूँ तरु - जीवन - आधार, किंतु हूँ पत्ता।
हूँ विदित गरलधर, किंतु मंजु मणिधर हूँ;
हूँ परम कलंकी, किंतु कांत निशिकर हूँ।

यद्यपि हूँ पंक-प्रसूत, पंकज हूँ ;
हूँ सरसीरुह - संजात, किंतु मै अज हूँ ।
पाहन द्वारा हूँ रचित, किंतु हूँ सुमनस
मै हूँ पर्वत - संभूत, किंतु हूँ पारस ।
हूँ तमोमयी खनि-जनित, किंतु हूँ हीरा ;
हूँ विविध - स्वाद - सर्वस्व, किंतु हूँ जीरा ।
हूँ दारुशरीरी, किंतु मलय - चंदन हूँ ;
हूँ सरि - सभव, पर मै सुरसरि - नंदन हूँ ।
हूँ पशु, परंतु हूँ कामधेनु-सा प्यारा ;
हूँ असित - गात, पर हूँ आँखो का तारा ।
हूँ तरु, परतु सुर-तरु-समान हूँ आला ;
हूँ कॉच, किंतु हूँ सरस सुधा का प्याला ।

सौंदर्य

कांत रविकर - किरीट कमनीय,
अलकृत ओस - युक्त मणि - माल,
विपुल स्वर्गीय विभूति - निकेत,
कुसुम - कुल-विलसित प्रातःकाल ।
उषा का जग - अनुरजन राग,
दिग्वधू का विमुग्धकर हास,
पुरातन है, पर है अति दिव्य,
और है भव - सौंदर्य - विकास ।

लोक का मूर्तिमान आनंद,
अवनितल परम अलौकिक लाल,
बहु विकच सुमन-समान प्रफुल्ल
विहँसता भोला-भाला बाल।

प्रतिदिवस के विकसे अरविंद,
तरु-निचय किसलय ललित ललाम,
नवल हैं, पर है रम्य नितांत,
वरन है अखिल-भुवन-अभिराम।

विश्व-जन-मोहन है सौंदर्य,
हृदयतल-अभिनंदन-आधार,
मधुरतम-मंजु सुधा-रस-सिक्त,
सरसता-युवती का शृंगार।

किसी जग ज्योतिमयी की ज्योति
इसी में लोचन सका विलोक;
इसी मे मिलता है सब काल
लोक को सकल-लोक-आलोक।

किंतु उसका अनुपम प्रतिबिंब
कुछ हृदय-मलिन मुकुर मे आज
नहीं प्रतिबिंबित होता अल्प,
मलिनता के हैं नाना व्याज।

सुनाता है कल वेणु-निनाद,
सुशोभित है कालिंदी-कूल;

ललित लहरें है नर्तनशील,
हँस रहे हैं मुख खोले फूल।
मत्तता छाई है सब ओर,
हो रहा है रस का संचार;
बरसते है सुर सुमन-समूह,
खुल गया है सुर-पुर का द्वार।
कल्पना है यह अति कमनीय,
सुधा-सर की है रुचिर तरंग;
पर न होंगे कुछ हृदय विमुग्ध,
क्योकि यह है प्राचीन प्रसंग;
हो रहा है अतीत सगीत,
छिड़ रहा है बहु मोहक तार;
बना है मुखर मुग्धता-मौन,
सुनाती है वीणा झकार।
किंतु हैं कतिपय ऐसे कान,
नही है जिनको इनसे प्यार;
सरस को करता है रस-हीन
किसी छाया का क्षोभ अपार।
रूप रमणी का है रमणीय,
लोक-मोहकता का है सार;
है प्रकृति-भाल रुचिर सिंदूर
काम-कामुकता का आधार।

कलाधर कलित कांति अवलंब,
कुसुम-कुल-निधि है उसका हास,
जग सृजन रंजन का सर्वस्व
है वनजवदनी विविध विलास।
भावमय रचनाएँ है भूरि,
हुआ जिनमें इनका सुविकास;
किंतु कुछ रुचियाँ है प्रतिकूल,
उन्हें कहती हैं कुरुचि-निवास।
अलौकिक रस-लोलुप कुछ भृंग
गूँजते हैं करके मधु पान;
लाभ कर कतिपय नवल प्रसून
सज रहा है प्रमोद उद्यान।
कुछ विहग हो-हो विपुल विमुग्ध
गा रहे है गौरवमय राग;
उक्ति अनुपम प्यालो के मध्य
छलक है रहा हृदय-अनुराग।
किंतु कुछ मानस है न प्रसन्न,
मोह से हो-होकर अभिभूत;
सकल भावों मे लगी विलोक
न-जाने किस छाया की छूत।
उन्हीं का है यह अमधुर भाव,
जिन्हे है सहृदयता-अभिमान;

हो रहा है वंचित रस बोध
रसिकता को सिकता अनुमान।
सुनाते फिरते है जो लोग
सत्य, शिव, सु दर का शुभ राग;
वे करे क्यो ऑखें कर बंद
विविध सुंदर भावो का त्याग।
अमंजुल उर का है यह मोह,
मानसिक रुज का है यह रोष,
बनेगा क्या मकरंद - विहीन
मधुरिमा - कांत कमल का कोष।
घुसे क्यों कलित कुसुम में कीट,
रहे क्यो अकलंकित न मयंक;
लाभ क्यो करे मलिन कल्लोल
पूत - सलिला सुरसरि का अंक।
कटकित सुमन - समूह - मरद
पान करता है मुग्ध मिलिंद;
कहीं भी मिले क्यो न सौदर्य,
तजे क्यो उसको सहृदय वृ द ?

असहृदयता

है वही रंगमच कवि - कर्म
जहॉ पर प्रकृति-नटी सब काल

दिखाकर रंग परम रमणीय
लुटाती है रत्नों का थाल।
यही है वह अनुपम उद्यान,
जहाँ खिलते हैं भाव-प्रसून ;
यही है वह महान रस-स्रोत,
जिसे अरसिक सकता है छू न।
यही है सहृदयता - सर्वस्व,
रसिकता - रजनी - अमल - मयंक ;
लोक-प्रतिभा-सरि-सलिल - प्रवाह,
भावना - भव्य - भाल का अंक।
रुचिर रुचिकर रचना का मूल
यही है ललित कला का ओक ;
यही है रस नभ - तारक - वृंद,
इसी से सज्जित है सुरलोक।
इसी सरसिज का कर रस पान
मत्त होता है मानस - भृंग ;
इसी रवि की आभा कर लाभ
दमकता है गौरव-गिरि - शृंग।
किंतु कुछ मलिन मन-मुकुर-मध्य
नहीं पड़ता उसका प्रतिबिंब ;
हो गए रुचि विकार संचार,
आम्र समझा जाता है निंब।

कभी करता है विविध प्रपंच
प्रवंचक प्राचीनता विराग;
बनाता है रवि को रज-पुंज
कभी नूतनताओ का त्याग।

रुज-ग्रसित हो नाना-रस-लुब्ध
नहीं छूता व्यंजन का थाल;
नहीं करना मुक्ता का मान
मोह-वश बन मद-अंध मराल।

दीया

समय के सिर का है टीका,
बड़ा ही सुंदर चमकीला;
कंठ का उसके है जुगनू,
कलाएँ है जिसकी लीला।

वह सुनहलापन है इसमें,
सुनहली कर दीं दीवारें;
रूप ऐसा है मन - मोहन
फतिंगे जिस पर तन वारें।

तेज सूरज या तारो का
जहाँ पर पहुँच नहीं पाता;
वहाँ पर जगी जोत भरकर
जगमगाता है दिखलाता।

हवा के पाले पलता है,
आग का बड़ा दुलारा है;
नमूना किसी जलन का है,
बहुत आँखों का तारा है।

उँजाला अँधियाले घर का,
दमक का है सुंदर डेरा;
निराला फूल जोन का है,
लाल दमड़ी का है मेरा।

गीता-गौरव

है परम - दिव्य - ज्योति - संभूत,
वेद - आभा से आभावान;
उपनिषद् का कमनीय विकास,
विविध आगम-निधि - रत्न महान।

मनुजता - मंदिर - रत्न - प्रदीप,
चारु-चिंतन - नभ - रुचिर - मयंक;
कल्पना - कलिका - कांत - प्रभात,
भारती - भव्य - भाल का अंक।

है अखिल-अवनी-तल-तम - काल,
उसी से है आलोकित लोक;

ज्ञान - लोचन का है सर्वस्व ;
अलौकिकतम गीता - आलोक ।

अतीत संगीत

था भव-प्रातःकाल, राग - रंजित था नभतल ;
लोहितवसना ललित अक था लोक समुज्ज्वल ।
था अभिव्यक्ति-विकास प्रकृति-मानस मे होता ;
धीरे - धीरे तिमिर - पुंज था तामस खोता ।
क्षितिज-अंक से निकल विभा के बहुविध गोले
केलि - निरत थे विविध कल्पना-कुसुमो को ले ।
मंथर गति से पवन-प्रगति थी विकसित होती ;
नव-जीवन का बीज नवल निधि मे थी बोती ।
सलिल-निलय संसार - लहरियो द्वारा चुंबित
अरुण असित सित विपुल विंब से था प्रतिबिंबित ।
किसी अकल्पित दिशा मध्य कर महा उजाला
एक अलौकिकतम तमारि था उगनेवाला ।
इसी समय इस सलिल - राशि में महामनोहर
एक अयुत - दल कमल हुआ भव-लोचन-गोचर ।
उसकी परमिति किसी काल में गई न मापी ;
उसका था विस्तार अमित - जगतीतल - व्यापी ।
विश्व-महान-विभूति-भूति थी उस पर विलसी ;
जिसमें विविध विधान की विबुधता थी निवसी ।

था जिस काल असंख्य लोक लीलामय बनता ;
भव कमनीय वितान जिस समय विभु था तनता ।
उसी समय संसारमयी नीरवता टूटी ;
महाकंठ का गान हुए रव - जड़ता छूटी ।
उससे हुआ दिगंत ध्वनित नभ-निधि लहराया ;
सकल लोक के स्वर-समूह में जीवन आया ।
गिरा हुई अवतीर्ण अनाहत नाद सुनाया ;
कर की वीणा बजे विमोहित विश्व दिखाया ।
लोकोत्तर झंकार अखिल लोकों में फैली ;
विविध - कंठ - आधार बनी अवधारित शैली ।
जो ज्वलंत बहु पिंड व्योमतल में थे फिरते ;
जहाँ-तहाँ जो विविध रंग के घन थे घिरते ।
महाउदधि में तरल तरंगें जो उठ पातीं ;
सरिताएँ जो मंद - मंद बहती दिखलातीं ।
जितने थे सर-स्रोत, रहे जो झरने झरते ;
अपर तरु-लता आदि जो विविध रव थे करते ।
उनमें भी थी बजी बीन ही झंकृत होती ;
जिससे जागी जग-विकास की ममता सोती ।
वेद - ध्वनि से ध्वनित हुआ भव - मंडल सारा ;
लोक-लोक में बही मधुर - स्वर-सप्तक - धारा ।
श्रवण-रसायन बनी, मुग्ध मानस में निवसी ;
विविध-राग-रागिनी-मध्य वह बहुविधि विलसी ।

उससे होकर मत्त गान वह शिव ने गाया;
जिसने सारे विबुध-वृंद को चकित बनाया।
उसकी मंजुल गूँज भूरि भुवनों में गूँजी;
बनी विश्व के विविध-धर्म-भावों की पूँजी।
उसके रस से सिंची लोक-भाषा-लतिकाएँ;
जिसमें विकसी कलित-ललित-सुरभित कलिकाएँ।
वह सुकंठता उसे साध नारद ने पाई;
जिसने सुरपुर - सदन - सदन में सुधा बहाई।
उससे भर-भर मिले छलकते मानस - प्याले;
जिनको पी गंधर्व बने मधुता - मतवाले।
नाच उठीं अप्सरा, गान वह मोहक गाया;
जिसने सारे स्वर - समूह को सरस बनाया।
ले-ले उसका स्वाद किन्नरों ने रस पाया;
सुना मनोहर तान वाद्य बहु मंजु बजाया।
उसकी ही कमनीय कला मुरली ने पाई;
मनमोहन ने जिसे महा मधुमयी बनाई।
जब वह मुरली बड़े मधुर स्वर से बजती थी;
प्रकृति उस समय दिव्य साज द्वारा सजती थी।
पाहन होते द्रवित पादपावलि छवि पाती;
रस - धारा थी लता-बेलियों पर बह जाती।
खग-मृग बनते मत्त, नाचते मोर दिखाते;
विकसित होते फूल, फल मधुर रस टपकाते।

रुकता सलिल - प्रवाह, कलित कालिंदी होती ;
वृंदावन की भूमि मलिनताएँ थी खोती।
होता हृदय-विकास, मुग्ध मानस बन जाते ;
साधक - सिद्ध पुनीत साधना के फल पाते।
साहस-हीन, मलीन जनो में जीवन आता ;
पातक होता दूर, मुक्ति - पथ मानव पाता।
क्या न कभी फिर मधुर मुरलिका बज पावेगी ;
क्या न कान में सरस सुधा फिर टपकावेगी।
जो जन-जन में भर विनोद - रस बरसावेगा ;
वह अतीत संगीत क्या न गाया जावेगा।

वैध विहार

प्रकृति - मानस का प्रिय अनुराग ,
लालसाओ का ललित मिलाप ;
रसिकता का रस - सिद्ध रहस्य ,
मुग्धता - मंजुल कार्य - कलाप।
अभिजनन का साधन सर्वस्व ,
भवन - भावन - विलास - अवलंब ;
युवकता - युवती का शृंगार ,
नवल - यौवन - कल्लोल - कदंब।
मधुरता - सरिता - सरस - प्रवाह ,
मोद - मंदिर मौलिक आधार ;

लोक - उपचय का प्रबल प्रयोग,
वंश - वर्धन का वर आधार।
युगल उर मिलन मनोरम सूत्र,
परस्पर परिचय का उपचार;
विविध - सुख - भोग-पयोधि-मयंक,
केलि - वीणा का झंकृत तार।
काम - सिर का सेहरा कमनीय,
रति - गले का बहु मोहक हार;
कामना का है मधुर विकास,
विविध - नर - नारी - वैध विहार।

कमनीय कामना

कांत कामना

ऐ नव-जीवन के जीवन-धन, ऐ अनुरंजन के आधार !
ऐ मंजुलता के अवलंबन, ऐ रसमयता के अवतार !
ऐ उमंगमय मानस के मधु, ऐ तरंगमय चित के चाव !
प्रकृति-कंठ के हार मनोहर, भव-भावुकता के अनुभाव !
ऐ कुसुमाकर, जो भारत को कुसुमित करते हो कर प्यार,
तो जीवन-विहीन में कर दो अभिनव-जीवन का संचार ।
मलय-पवन नित मंद-मंद बह करे मंदता मन की दूर ;
सौरभ-रहित भाव-भवनों मे सरस सुरभि भर दे भरपूर ।
कोकिल की काकली सुनावे वह अति कलित अलौकिक गान,
जिससे कुंठित विपुल कंठ मे पूरित हो उत्कंठित तान ।
भरी मत्तता मोहकता से अलि-कुल की आकुल झंकार ;
झकृत करे अझंकृत मानस, छेड़े हृत्तंत्री के तार ।
तरु-किसलय की नवल लालिमा भरे लोचनों में अनुराग ;
लता-बेलियों के विलास से विलसे अंतर का नव राग ।
विकसे-विकसे कुसुम देख हो देश-प्रेम का परम विकास ;
जाति-वासनाएँ बन जाएँ सरस वास का वर आवास ।

लाली मुख की रखे मुखों पर लग-लग करके लाल गुलाल;
रंजित करे अरंजित जन को आरजित अबीर का थाल।
रंग बिगड़ता रहे बनाता समय रग रख-रख कर रंग;
भंग भग कर सके न गौरव सुउमंगित हो फाग उमग।

मुरली की तान

कहलाते है हिंदू-बालक, बनते हैं हिंदू-कुल-काल;
हैं भारत-ललना से लालित, किंतु हैं न भारत के लाल।
रोम-रोम है देश - प्रेममय, रखते है न जाति से प्यार;
राजनीति के अनुपम नेता, पर कुनीति के है अवतार।
हैं कल-हंस, चाल बक की-सी, है कल-कंठ, किंतु है काक;
है कमनीय कुसुम-से कोमल, किंतु अकोमलता - परिपाक।
हैं गज-दंत-समान द्विविध गति, सुमन-माल-सज्जित है नाग;
विष-परिपूरित कनक-कुंभ है, बधिक-विपची के हैं राग।
हिंदू ललना, लाल लालसा पर अपनी देते है वार;
है काढ़ता कलेजा निजता-प्रियता का नेतापन प्यार।
बात रहे, हठ रहे, रसातल जाय भले ही हिंदू-जाति;
वह खोवे सर्वस्व, किंतु हो मलिन न उनकी निर्मल ख्याति।
पर पग रज कर वहन झोंकते हिंदू आँखों मे है धूल;
हैं जिसकी छाया मे जीवित, है उसको करते निर्मूल।
आग लगाता है निज घर में उनका परम निराला नेह;
होती सिंचित कीर्ति-लता है बरसे जाति-रुधिर का मेह।

आकुल हूँ, है हृदय व्यथित अति कुल-कमलों की गति अवलोक ;
कैसे होगा दूर निविड़ तम, क्यों आलोकित होगा लोक।
मनमोहन, विमोह सब हर लो, गा दो जन-मन-मोहन गान ;
समय देख सुर-लीन बना लो, फिर छेड़ो मुरली की तान।

वीणा-झंकार

नहीं लुभा लेना है उर को ललित लयों से पूरित गान ;
मोह नहीं मानस लेती है सरस कंठ की सुंदर तान।
अंतर ध्वनित नहीं होता है सुने स्वर्ग ध्वनिमय आलाप ;
नहीं अलं भी मुग्ध बनाता अति मंजुल स्वर-ताल-मिलाप।
मौन हो गई मंजु मुरलिका, टूटे हैं सितार के तार ;
बंद हुई-सी है दिखलाती बहती हुई सुधा की धार।
रही नहीं अब वह प्रफुल्लता, रहा नहीं अब वह उत्साह ;
नहीं प्रवाहित हो पाता है अब उर में आनंद-प्रवाह।
छिन्न हुआ सुख-सूत्र हमारा, धुला शांति-शिर का सिंदूर ;
ज्ञान-नयन की जगतरंजिनी ज्योति हुई जाती है दूर।
हुआ भाल का अंक कलंकित बहु अनुकूल काल प्रतिकूल ;
झोंक रही है चित-आकुलता भावुकता आँखों में धूल।
रहा नहीं अब हृदय वह हृदय, रुद्ध हुई उन्नति की राह ;
चाव हो गया चूर, किंतु चिंतित चित को है इतनी चाह।

होवे किसी मंजु वीणा की लोक-चकित-कर वह झंकार,
जिससे हो जावे भारत के जन - जन मे जीवन-संचार ।

मगल-कामना

मंगल गान सुर-वधू गावे,
बहु विमुग्ध दिग्वधू दिखावे ;
विलस गगन-तल में छवि पावे,
सु-मनस-वृंद सुमन-झर लावे ।
विविध-विनोद-वितान विधि-सदन मे तने ।
समय ललित लीलामय होवे,
काल कलंक-कालिमा धोवे ;
रंजन - बीज रजनिकर बोवे,
दिनमणि दिवस-मलिनता खोवे ।
छाया हो छविमयी धूप छिति पर छने ।
जन-मन-रंजन ऋतु बन जावे,
मधु मधुमयता - मत्र जगावे ;
मंजु वारि वारिद बरसावे,
पवन - प्रवाह सरसता पावे ।
सदा सुधा मे रहें सुधाकर-कर सने ।
सब तरुवर मीठे फल लावें,
ललित लता बेलियाँ लुभावें ;
सुमन सकल फूले न समावें,

तृण मुक्ता फल मंजु दिखावें ।
विपुल अलौकिक जड़ी विपिन-अवनी जने ।
कंचन - प्रसू नगर हो न्यारे,
ग्राम हो प्रकृति - मुकुर-सँवारे;
बने शस्य - श्यामल थल सारे,
सुंदर सरि सर सलिल सहारे।
नगमय हों नग-निकर, रत्न दे खनि खने।
जन-जन सिद्धि - साधना जाने,
हो सब सुजन सुबोध सयाने;
बुद्धि विमुक्ति - महत्ता माने,
विबुध विबुधता - पद पहिचाने ।
हितविधायिनी विविध बात जी में ठने।
पूत प्रीति - रस प्रेम पिलावे,
सुमति - सुधा मानस उमगावे;
बंधु - भाव - व्यंजन भा जावे,
मानवता मधु मुग्ध बनावे ।
रुचि उपजाएँ रुचिर चरित रुचिकर चने।
उभय लोक वैभव अपनावे,
निर्भय हो भय - भूत भगावे;
मंजुल भाव - भावना भावे,
भव भावुकता - भरित कहावे ।
भूरि विभूति - निकेत भरत - भूतल बने ।

कामना

विपुल अनुकूल कूल जिसका
है मनोरम मुखरित प्यारा ;
जहाँ बहती है सरसा बन
कल्पना - कालिंदी - धारा ।
कामना - कुंजें हैं जिसमें,
अधिकतर जो है अनुरंजन ;
बसो आकर उसमें मोहन,
हमारा मन है वृंदावन ।

नीति-निचय

मन का

छेड़ता जो कि है जले तन को,
कौन कहता उसे नहीं सनका;
आग के साथ खेलना है यह,
यह पकड़ना है साँप के फन का।

गिर किसी जल रहे तवे पर वह
क्यो न जल-बूँद की तरह छनका;
जाति में आग जो लगाता है,
क्यों न गोला उसे लगा गन का।

धूल में धाक मिल गई सारी,
है कलेजा कढ़ा बड़प्पन का;
किस तरह ठान ठानती कोई,
जाति-माथा न आज भी ठनका।

छोड़ना एक आन मे होगा,
हो भले ही मकान सौ खन का;
आ गई साँस, या नहीं आई,
क्या ठिकाना हवा-भरे तन का।

मेघ की छाँह है, छलावा है,
क्यो किसी को गुमान है धन का ;
धूल मे मिल गए महल लाखो,
छिन गए राज हो गया 'छन' का।
है जिन्हे पेट की पड़ी, उनको
मिल गया क्या न, फल मिले बन का;
पूछ लें मोल चींटियों से हम
चावलो के गिरे हुए कन का।
भूलते लोग सब रसों को हैं,
जागता भाग है मरे जन का ;
हो सकेगी न पूछ अमृत की
मिल गए दूध गाय के थन का।
है सिधाई बहुत भली होती,
है बुरा रंग काइयाँपन का ;
साँसतें हों, मगर सता पाएँ,
हम न यह ढग सीख लें 'संन' का।
फूटने पर जुड़ा नही जोड़े,
ठेस थोड़ी लगे बहुत झनका ;
क्यो न आँचें सहे, पिटे, टूटे,
ठीक बरताव है न बरतन का।
कौन उसकी रहा न मूठी में
सब कँपा देख रंग अनबन का ;

है कहाँ, कौन मिल सका ऐसा,
जो कहा मानता नहीं मन का।

लहर

कलेजा कब चिचोरती नहीं
बन चुड़ैलों-जैसी बद बहू;
दूध जिस मा का पीकर पली,
चूस लेती है उसका लहू।
हाथ से जिसके पल जी सकी,
गोद में जिसकी फूली-फली;
बेतरह लुटता है वह बाप,
छुरी गरदन पर उसकी चली।
सगा भाई - जैसा है कौन,
दबाती है उसका भी गला;
सदा जो अपने माने गए,
सिरों पर उनके आरा चला।
देख आँसू न पसीजी कभी,
लाख हा आँखें फोड़ी गईं;
प्यार से भरी प्यालियाँ बहुत
सितम-हाथों से तोड़ी गईं।

कलेजे कितने कुचले गए,
चाहतें कितनी ही पिस गई;
फूल-सी खिलती कितनी आस
चुटकियों में उसकी मिस गईं।

छिन गए लाखों मुख के कौर,
पेट कितने ही काटे कटे;
हो गए वे कौड़ी के तीन,
जो न तीनों लोकों में अँटे।

बन गए कितने हीरे-कनी,
कलेजे पत्थर-जैसे हिले;
लगाए उसके लागें लगीं,
लाख हा लोग धूल में मिले।

है सितम, साँसत, पत्थर निरी,
काल साँपिनी, फूटती लवर;
जब मिली, मिली लहू से भरी,
किसी लोभी के मन की लहर।

शांति

प्रबल जिससे हों दानव-वृंद,
अबल पर हो बहु अत्याचार;

कुसुम-कोमल उर होवे बिद्ध,
धरा पर बहे रुधिर की धार।
सूत्र मानवता का हो छिन्न,
सदयता का हो भग्न कपाल;
लुटे सज्जनता का सर्वस्व,
छिने सहृदयता - संचित माल।
हरण हो मानवीय अधिकार,
लोक-बल जिससे होवे लुप्त;
आत्म-गौरव का हो संहार,
सकल जातीय भाव हो सुप्त।
दलित हो भव-जन-पूजित भाव,
अनादृत हों अवनी - अवतंस;
जाति-सुख-कल्प-वृक्ष हो दग्ध,
लोक - हित - नंदन-वन हो ध्वंस।
पाप का होवे तांडव नृत्य,
घरों में हो पैशाचिक कांड;
हो दनुज - अट्टहास की वृद्धि,
विलोड़ित हो जिससे ब्रह्मांड।
है परम दुर्बल चित की वृत्ति,
भ्रांत मन की है भारी भ्रांति;
है अवनितल अशांति की मूल,
शांति वह कभी नहीं है शांति।

हाहाकार

वज्री के अति प्रबल वज्र-सम
वज्र हृदय-जन का है काल;
दंडनीय जन के दंडन-हित
है अंतक का दंड कराल।
शूल-प्रदायक प्राणिपुंज को
है शूली का तीव्र त्रिशूल;
चक्र-पाणि के चक्र-तुल्य है
कलि-चक्रांत-निपुण प्रतिकूल।
रक्त-पिपासु रक्त-पान-हित
है काली आरक्त-कृपाण;
लोक-निधन-रत निधन-हेतु है
निधनंजय पिनाक का बाण।
भूतों को सभीत करने को
है भैरव का भैरव नाद;
उसके लिये अशेष शेष-फण
जिसको है विशेष उन्माद।
गरल-मान का अगरलकारी
गरल-कंठ का कंठ महान;
दहन-निपुण दाहन निमित्त है
हर-तृतीय-दृग-दहन-समान।

प्रलय-काल के कुपित भानु-सम
बन-बनकर विकराल - अपार ;
दग्ध बनाता है वसुधा को
व्यथित हृदय का हाहाकार।

विबोधन

खुले न खोले नयन, कमल फूले, खग बोले ;
आकुल अलि-कुल उड़े, लता-तरु-पल्लव डोले।
रुचिर रंग मे रँगी उमगती ऊषा आई ;
हँसी दिग्वधू, लसी गगन मे ललित लुनाई।
दूब लहलही हुई पहन मोती की माला ;
तिमिर तिरोहित हुआ, फैलने लगा उँजाला।
मलिन रजनिपति हुए, कलुष रजनी के भागे ;
रजित हो अनुराग - राग से रवि अनुरागे।
कर सजीवता दान बही नव-जीवन-धारा ;
बना ज्योतिमय ज्योति-हीन जन - लोचन - तारा।
दूर हुआ अवसाद गात गत जड़ता भागी ;
बहा कार्य का स्रोत, अवनि की जनता जागी।
निज मधुर उक्ति वर विभा से है उर-तिमिर भगा रही ;
जागो-जागो भारत-सुअन, है जग-जननि जगा रही।

भारत के नवयुवक

जाति-धन, प्रिय नव-युवक-समूह ,
विमल मानस के मंजु मराल ;
देश के परम मनोरम रत्न ,
ललित भारत - ललना के लाल ।

लोक की लाखो आँखें आज
लगी है तुम लोगो की ओर ;
भरी उनमें है करुणा भूरि ,
लालसामय है ललकित कोर ।

उठो, लो आँखे अपनी खोल ,
बिलोको अवनी - तल का हाल ;
अनालोकित में भर आलोक ,
करो कमनीय कलकित भाल ।

भरे उर में जो अभिनव ओज ,
सुना दो वह सुदर झनकार ;
ध्वनित हो जिससे मानस-यंत्र ,
छेड़ दो उस तंत्री का तार ।

रगों में बिजली जावे दौड़ ,
जगे भारत - भूतल का भाग ;
प्रभावित धुन से हो भरपूर ,
उमग गाओ वह रोचक राग ।

हो सके जिससे सुगठित जाति,
सुकंठों में गूँजे वह तान;
भाव जिसमें हों भरे सजीव,
करो ऐसे गीतों का गान।

कर विपुल - साहस वज्र - प्रहार—
विफलता-गिरि को कर दो चूर;
जगा दो सफल साधना - ज्योति,
विविध बाधा-तम कर दो दूर।

गगन में जा, भूतल मे घूम,
निकालो कार्य - सिद्धि की राह;
अचल को विचलित कर दो भूरि,
रोक दो वारिधि-वारि-प्रवाह।

धूल में क्यों मिलती है धाक,
बचा लो बची-बचाई आन;
मचा दो दोष - दलन की धूम,
मसल दो दुख को मशक-समान।

लाभ-हित देश-प्रेम - रवि - ज्योति
आँख लो निज भावों की खोल;
त्याग करके निजता - अभिमान,
जाति-ममता का समझो मोल।

देश के हित निज-जाति-निमित्त
अतुल हो तुम लोगों का त्याग;

अवनि - जन - अनुरंजन के हेतु
बनो तुम मूर्तिमान अनुराग।
अनाथों के कहलाओ नाथ,
हरो अबला जन - दुख अविलंब ;
सबलता करो जाति को दान
अबल जन के होकर अवलंब।
बनो असहायों के सर्वस्व,
अबुध जन की अनुपम अनुभूति ;
वृद्ध जन के लोचन की ज्योति,
अकिंचन जन की विपुल विभूति।
सरस रुचि रुचिर कंठ के हार,
सुजीवन - नव - घन - मत्त - मयूर ;
लोक - भावुकता तन - शृंगार,
सुजनता - भव्य - भाल - सिंदूर।
भरो भूतल में कीर्ति - कलाप
दिखा भारत-जननी से प्यार ;
करो पूजन उनका पद-कंज
बना सुरभित सुमनों का हार।

मर्म-वेध

देश

सबल हो विरल है बलहीन,
अहित को है हित-मात्र प्रदत्त;
पान कर मनमानापन - मद्य
स्वराजी है नितांत मदमत्त।

सुनाते हैं स्वतंत्रता - तान,
किंतु है कहाँ स्वतंत्र स्वतंत्र;
छेड़ते है हृत्तंत्री - तार
अन्य दल भूल जाति - हित - मंत्र।

बहुत ही है अनेकता - प्यार,
एकता पर है सारा कोप;
सभाएँ जाति-जाति की बनीं,
हुआ जातीय भाव का लोप।

फूट से फटे आज भी नहीं,
बढ़ रहा है दिन-दिन यह रोग;
मिटाना जाति - पाँति है, मगर
उसी पर मर मिटते है लोग।

कपट है पोर - पोर मे भरा,
अधम का काम, साधु का वेश;
सभी है अहंभाव में मस्त,
कलह का क्रीड़ा-थल है देश।

हृदय-वेदना

कहाँ वह सरस वसंत रहा,
जो देता था भारत - भू में रस का सोत बहा।
पलाशों की बिलोक लाली
लहू आँखों मे है आता;
देख उसमें का कालापन
दोष अपना है खल जाता।
दिल दहलाता है लोहू से दाड़िम-सुमन नहा।
अलि - अवलि का मतवालापन
मलिन कर देता है मानस;
याद वह बहु मद है होता,
सरस में रहा न जिससे रस।
सुन विधवा - विलाप कोकिल - रव जाता है न सहा।
मंद चल - चल कर मलय - पवन
मंदता है वह बतलाती;

जो विपुल कुल - बालाओं पर
बलाएँ नित नव है लाती।
है मधूक - दल विकल बनाता हो रुधिराभ महा।
बहुलता नाना कल - छल की
विदित करती है कुसुमावलि;
कलह है किसलय-सम उपचित,
हुई जिस पर विरुदावलि बलि।
कब मुँह खोल जाति कलको को कलिका ने न कहा।
परम असरस फल - पुंज - जनक
सेमलो के कमनीय सुमन—
देश की नीरसता बतला
बनाते है बहु आकुल मन।
चित-अनुताप-अधम तम ने है उमग मयंक गहा।

सूखा रंग

लाल-लाल कोपल से तरुवर वैसे ही होते है लाल;
ललित विविध सुमनो से सज्जित वैसी ही होती है डाल।
पावक-सम अरुणाभ फूल से बनते है कमनीय अनार;
वैसे ही लोहित कुसुमो से विलसित होता है कचनार।
सेमल वैसे ही लसते है, वैसे ही हैं ललित पलास;
वैसे ही पल्लव-कुल में है लोक-लालिमा मंजु विलास।

किंतु होलिके ! तव मुख-लाली अब वैसी है नहीं रसाल ;
वह गुलाल का चाव नहीं है, गाल है न वैसा ही लाल।
रंग-भरी तू है न दिखाती, है न अबीर-भरी तू आज ;
पहले-जैसा है न दिखाता लाल रंग मे डूबा साज।
है न गगन-तल रंजित होता, है न खेलते तारक फाग ;
अवनी-तल का सारा रज-कण बना न मूर्तिमान अनुराग।
क्या है कोई हृदय-वेदना किंवा कोई अंतर्दाह ;
अथवा म्लान तुझे करता है क्रूर काल प्रतिकूल प्रवाह।
क्या भारत में अब न कभी आवेगा वह अति मंजुल वार ;
जिस दिन तेरा विभव पूर्ववत दिखलावेगा लसित अपार।

अंतर्दाह

किसलिये टूटी कितनी आस,
हुआ क्यो सुख में दुख का वास ;
बतला दे होलिके ! कहाँ वह गया मनोहर हास।
किसी का छिना भाल-सिंदूर,
किसी का टूटा सुंदर हार ;
किसी का गया सुधा-सर सूख,
किसी का लुटा स्वर्ण-ससार।
क्या इससे ही भूल गई तू अपना सरस विलास।

नेत्र कितने है ज्योति-विहीन,
उरो से बही रुधिर की धार;
सरस भावों के मंजुल कंज
जल गए पड़े प्रपच-तुषार।
इसीलिये क्या नही हो सका तेरा ललित विकास।
लालसाएँ हो चली विलीन,
रसातल है जा रही उमंग;
पड़ा रसमय रुचियो का काल,
है लहू-भरी विनाद-तरग।
कैसे तो न लुप्त हो जाता तेरा नव-उल्लास।
बन गया है हित के प्रतिकूल
परम विकराल काल का कोप;
ज्ञान-जीवन है विदलितप्राय,
हुआ जानाय भाव का लोप।
कैसे तो न धूल मे मिलता सुख-कल्पित-कैलास।

अतर्नाद

कहाँ गई मुखड़े की लाली,
किसने छीनी छटा निराली;
पीला क्यो पड़ गया होलिके! तेरा गोरा गाल।

मनोवेदना

चिर दिन से आँखें आकुल हो लालायित हैं मेरी;
भारत - जननि, नहीं अवलोकी कांति अलौकिक तेरी।
वर विकासमय वारिज के सम विकसित बदन न देखा;
चारु अधर पर नहीं बिलोकी रुचिर हँसी की रेखा।
कहाँ गई वह रूप-माधुरी, जो थी मुग्ध बनाती;
कहाँ गई वह भाव-मंजुता, जो भव-विभव कहाती।
कहाँ गई वह कला-चातुरी लोक चकित कर चोखी;
कहाँ गई वह गौरव-गरिमा जग-रंजिनी अनोखी।
क्यों तू है अवसन्न, दिखाती क्यों बहु चिंतित तू है;
क्यों परमाकुल नयन-युगल से आँसू पड़ता चू है।
बहु आलोकित होते भी क्यों तिमिर-भरित है काया;
क्यों मह न मानस-नभ में है मोह-निविड़-घन-छाया।
अपने बहु कपूत पूतों की देख अपार कपूती;
बनी बिलोक जाति-ममता को कामुकता की दूती।
अवलोकन करके कुलीन को कुल-कलंक उत्पाती;
क्या तू छन-छन छीज रही है छिले-छत-भरित छाती।
घर-घर कलह-वैर है फैला, जन-जन है मदमाता;
मनमानी की मची धूम है, टूट रहा है नाता।
नए-नए नाना विचार में कपटाचार समाया;
जो लोचन है ज्योति-निकेतन, उन पर तम है छाया।

पावन प्रेम-पंथ को तजकर प्रेमिकता से ऊबी;
लोक-ललाम भूत-ललना है लोलुपता मे डूबी।
है विलास-वासना लुभाती, अहंभाव है भाता;
नारि-धर्म को त्याग-रहित है समता-भाव बनाता।
देव-भवन में देव-भाव का है अभाव दिखलाता;
सुर - दुर्लभ - सपति - सुमेर है सदा छीजता जाता।
सूख रहा है सुधा-सरोवर, स्वर्ग ध्वंस है होता;
रत्नाकर निज अंक-विराजित रत्न-राजि है खोता।
सहनशीलता कायर की कायरता है कहलाती;
चित की दुर्बलता दयालुता बन है आदर पाती।
सकल कुटिलता गई, कल्पना राजनीति की मानी;
बहुवचकता चरम चतुरता की है चारु कहानी।
रहा न धर्म, धर्म - आडंबर ही है धर्म कहाता;
जन मयंक छूने को वामन होकर है ललचाता।
नरक - वास कर लोग बात है सुरपुर की बतलाते;
है नंदन-वन-पथिक, किंतु है चले रसातल जाते।
क्या इन बातों को विचार तू प्रतिदिन है कुम्हलाती;
शोच-विवश ही कलित कांति क्या मलिन बनी है जाती।
कब तक जाएगा जगवंदिनि, यह महान दुख भोगा;
क्या अब नहीं सुदिन आवेगे, स्वर्ण-सुयोग न होगा।

प्रलाप

विजयिनी बनती हो, तो बनो,
किसे है यहाँ विजय से काम;
वेदना है रग-रग में भरी,
कलप है रहे कलेजा थाम।

गर्व गत गौरव का क्यों करे,
हम रहे हैं रौरव-दुख भोग;
फफोलो से है छाती भरी,
उपजते नए-नए है रोग।

उमंगें कैसे उसमें भरें,
दूर उसका हो कैसे खेद;
कलेजा जिसका छलनी बना,
हुआ जिसकी छाती में छेद।

वीरता-वैभव को अवलोक
करें वे क्या, जो बने विरक्त;
न जिनमें है जीवन का नाम,
न जिनकी धमनी में है रक्त।

किस तरह वे समझें यह भेद—
है न हिंसक की हिंसा पाप;
काँपते हैं थर-थर जो लोग
समझ करके रस्सी को साँप।

रो रहे है, रोने दो, हमें
नही भाता है हास-विलास;
हटो, क्या करें तुम्हें लेकर?
कौन हो, क्यों आई हो पास?

अंतर्वेदना

किसलिये आई हो तुम आज,
चित व्यथित हुआ तुम्हे अवलोक;
हो गए पूर्व विभव की याद,
भर गया अतस्तल मे शोक।

जहाँ बहता था रस का सोत,
वहाँ है बरस रहा अंगार,
बन गया परम भयंकर व्याल
गले का कलित कुसुम का हार।

वहाँ अब छाया है तम तोम,
जहाँ था लसित ललित आलोक;
सकल आलय है भरित विषाद,
कलह-कोलाहलमय है लोक।

दिखाता नहीं शांति-मुख मंजु,
विकलता छाई है सब ओर;
सुखों पर होता है पवि-पात,
घहरता है आपद-घन घोर।

दश दिशा में जय-केतु-समान
रहे फैले जिसके दश हाथ;
सहचरी जिसकी थी सब काल
'इंदिरा' हंसवाहना साथ।
बसे जिसके ढिग मंगल-मूर्ति
देव-सेनापति-सहित सदैव;
भूति वह हुई प्रभाव-विहीन,
हो गया परम प्रबल दुर्दैव।
हमारी सिंहवाहिना शक्ति
आज सोई है पाँव पसार,
सुनाता है नभ-तल को वेध
विपुल-आकुल-जन-हाहाकार।
किसलिये लें न कलेजा थाम,
तुम्हें क्या दें विजये, उपहार,
हो गए हैं छाती में छेद,
नयन से बहती है जल-धार।

करुण दशा

घर-घर ग्राम-ग्राम नगरों में भर जावेगा भूरि प्रकाश;
विभा बढ़ेगी, तो भी होगा क्या भारत-भूतल-तम-नाश?
अगणित दीपावलि चमकेगी, चमक उठेगा चारु दिगंत;
तो भी क्या तामस मानस के तमो भाव का होगा अंत?

आलोकित कर सकल थलों को सफलित होवेगा आलोक ;
तो भी क्या तम-वलित विलोचन सकेंगे स्वहित वदन विलोक।
जहाँ-तहाँ कोने-कोने में जग जाएगी ज्योति अपार ;
तो भी क्या विमुक्त होवेगा अधकार-अवरोधित द्वार।
बड़ी व्यथामय ये बाते है, कैसे होवेगा निस्तार ;
दीपमालिके, कर पावेगी क्या तू इसका कुछ प्रतिकार ?
रक्त-सिक्त क्यों उत्सव होवे, क्षत-विक्षत क्यों हो सुख-पुंज ;
हो विदलित बहु म्लान बने क्यों परम मनोरम शांति-निकुंज।
क्या जन-करुण दशा अवलोके तू न कलेजा लेगी थाम ;
मलिन क्या नही बन जावेगा तेरा आनन लोक-ललाम ?
व्यथित हो रहा हूँ, आएँगे क्या अब नही मनोहर बार ;
वैसा फिर न चमक पावेगा क्या भारत का भव्य लिलार ?

परिवर्तन

(१)

टपकता ही रहता है क्यों,
पड़ा कैसे दिल में छाला ;
उँजेले में क्यों रहता है
सामने दृग के अँधियाला ?
फूल खिल-खिल हँस-हँस करके
लुभा लेते थे दिल मेरा ;

आँख उन पर पड़ते ही क्यों
दुखों ने मुझको आ घेरा ?

महँकती हवा पास आए
थिरकने लगती थी चाहे ;
अहह ! उसके आते ही क्यों
आज निकली मुँह से आहे ?

कली का मुँह जब खुल जाता,
बड़ी प्यारी बातें कहती,
रंगतें बदलीं, तो बदलीं,
किसलिये है वह चुप रहती ?

देखकर फूली लतिकाएँ
ललचती रहती थीं ललकें ;
उन्हे अवलोकन कर अब तो
उठ नहीं पाती हैं पलकें !

प्यार मै करती चिड़ियो को,
गले से गला मिला गाती ;
उन्हीं का मीठा गाना सुन
क्यो धड़क उठती है छाती ?

बहुत आँखे सुख पाती थीं
देख अलि को देते फेरी ;
आज उनके अवलोके क्यो
फूटती हैं आँखे मेरी ?

दिन रहे कितने चमकीले,
रात भी कालापन खोती ;
भर गया क्यों अब उनमे तम,
आग क्यों रजनी है बोती ?

क्यो नहीं पहले ही का सा
लहर में सुख की बहता है ;
किसलिये किस उलझन में पड़
जी उड़ा मेरा रहता है ?

खिले फूलों-जैसा जो था,
हुआ कैसे काँटा वह तन ;
आँख जलती है जल बरसे,
हो गया कैसा परिवर्तन ?

(२)

भरा आँखों में था जादू,
हँसी होठों पर थी रहती ;
बात टूटी - फूटी कहते,
किंतु रस - धारा - सी बहती।

गोद में बैठे रहते थे,
लोग थे मुँह चूमा करते ;
स्वर्ग था तब घर बन जाता,
जब कभी किलकारी भरते।

बलाएँ माता लेती थी,
पिता मुझ पर बल-बल जाता;
दूसरे लोगों के मुँह से
प्यार का पुतला कहलाता।

जिधर आँखें मेरी फिरतीं,
समा न्यारा पाया जाता;
लबालब रस का प्याला भर
छलकता ही था दिखलाता।

गए जब ये दिन, तब मैंने
अजब अलबेलापन पाया;
चाँद-जैसा मुखड़ा चमका,
बनी कुंदन की-सी काया।
उमंगें उठीं बादलों-सी,
तरंगें लगीं रंग लाने;
हुई मिट्टी छूते सोना,
रस लगे मिलने मनमाने।

चाहतें कितने लोगों की
पिरोती थीं हित के मोती;
रीझती मुँह देखे दुनिया,
निछावर परियाँ थीं होती।

सामने सुख-निधि लहराता,
हाथ आ जाता था पारस;

कारवन मे मिलता हीरा,
कब कहाॅं जाता हुन न बरस ?
हुए क्या ऐसे सुंदर दिन,
काल ने मुझको क्यों लूटा ;
किसलिये सारा तन सूखा,
पक गए बाल, दाॅंत टूटा।

बात सुन कान नही सकता,
आँख की जोत रही जाती,
बेतरह जी घबराता है,
रात में नींद नहीं आती।
पाँव कँपता ही रहता है,
हाथ में हाथ नही अपना ;
नहीं मन मन की कर पाता,
हो गया तन का सुख सपना।

बात क्या बाहरवालों की,
नही सुनते है घरवाले ;
बात ऐसी कह देते है,
पड़ें जिससे दिल में छाले।

न लड़के - बाले हैं अपने,
न अपना धन है अपना धन ;
समय भी रहा नहीं अपना ;
हो गया कैसा परिवर्तन ?

विजयागमन

आती हो प्रतिवर्ष दिखा जाती हो गरिमा ;
भर जाती हो मुग्ध मनों मे महा मधुरिमा ।
कितनी हीं कमनीय कलाएँ हो कर जाती ;
विविध जीवनी शक्ति जाति मे हो भर पाती ।
किंतु आज भी जाग न पाई भारत-जनता ;
है इतनी बल-हीन, कुछ नहीं करते बनता ।
चलती है वह चाल, पतन है जिससे होता ;
गेह-गेह में कलह-बीज जन-जन है बोता ।
गरल-हृदय है परम - मधुर - मुख बने दिखाते ;
जल - सेचन - रत जहाँ, तहाँ है आग लगाते ।
ले सुधार का नाम लोग है काँटे बोते ;
पथ मे लबी तान लोक-नेता है सोते ।
देश-प्रेम की लगन किसे सच्ची लग पाई ;
कौन कर सका सत्य भाव से देश-भलाई ।
देखा आँखे खोल कहाँ मिल सका उजाला ;
घर-घर में है भरा हुआ अब भी अँधियाला ।
क्या दिगंतव्यापिनी कीर्ति फिर फैलाएगा ?
उसका गौरव-गीत क्या जगत फिर गाएगा ?
पूर्व विभव कर लाभ क्या पुनः प्रबल बनेगा ?
विजये, क्या फिर विजय-माल भारत पहनेगा ?

मर्म-स्पर्श

प्रेम-परख

(१)

प्रेम - धन से पुनीत प्रेम न कर
जो बनी प्रेम-रंकिनी है वह,
तो लगेंगे कलंक क्यों न उसे,
कामिनी-कुल-कलंकिनी है वह।

है अहंभाव प्रेम का बाधक,
वह नहीं प्रेम-बीज है बोता;
ऊबता प्रेम है बनावट से,
प्रेम है प्रेम के लिए होना।

तब कहाँ प्यार-रंग चढ़ पाया,
जब कि है नित्य ही लगा हम-तुम;
है कपट-कीट जो समाया, तो
है किसी काम का न प्रेम-कुसुम।

व्यर्थ फूली रही, मिला फल क्या?
बन किसी आँख की गई फूली;

आपको जो न भूल पाई, तो
प्रेम कर प्रेमिका बहुत भूली।
प्रेम कर प्रेमदेव-हाथ बिके,
प्रेम-पथ-सूत्र है यही पहला;
जो निबाहे न प्रेम निबाहा तो,
क्यो करे प्रेम प्रेमिका अबला।

(२)

रंग लाती दुई जहाँ पर है,
है वहाँ एकता-निवास कहाँ;
गाँस की फाँस है अगर जी मे,
तो रही प्रेम में मिठास कहाँ?
जो नहीं है सनेह से चिकनी,
जो न उसमें हृदय-विकास मिले;
आग लग जाय तो लुनाई में,
धूल मे बात की मिठास मिले।
चाह-विष-बेलि जब बला लाई,
क्यों न तब सूख त्याग-तरु जाता;
पास समता-विचार-पादप के
प्रेम-पौधा पनप नहीं पाता।
क्यों न अनुराग तो सहे आँचे,
क्यो न तो पूत प्रीति रुचि जलती;

तो न उठती बिराग-लपटें क्यों,
लाग की आग है अगर बलती।

तो न चाहे, अगर न जी चाहे,
क्यो लगे ऑख, जो लगे न लगन;
प्रेम से ऑख जो चुराना है,
चित चुराती रहे न तो चितवन।

(३)

एक है सुरपुर - सुपथ - मंदाकिनी,
सुख - सरित है दूसरी मरु-राह में;
है बड़ा अतर, असमता है बहुत,
प्रेम - ममता और समता चाह में।

पति-परायणता वहॉ कैसे पुजे,
है जहॉ फहरा रही ममता-ध्वजा;
प्रेम की आधीनता क्यो प्रिय लगे,
चित्त मे स्वाधीनता-डंका बजा।

चित-विमलता जो विमल करती नही,
तो अधर पर किसलिये विलसी हॅसी;
जो मधुरता है न उसमें प्रेम की,
तो मधुर मुसकान क्या मुख पर लसी।

उस सरसता में सरसता है कहाँ,
है बनी जिसकी कि नीरसता सगी;

रंग सुख की चाह का कैसे रहे,
प्रेम रंगत में न रँगने से रँगी।
वह विना सच्ची-लगन-जल से सिंचे;
पा अलौकिक-भाव-दल पलता नहीं;
चित-विमलता-मंजु - अवनीतल विना
प्रेम-पौधा फूलता-फलता नहीं।

हृदय-दान

अलकावलि को केलिमयी कमनीय बनाया;
कोमल मंजुल - कुसुम - दाम से उसे सजाया।
किया रुचिर सिंदूर-विंदु से भाल मनोहर;
सरस नयन मे दिए भाव कुसुमायुध के भर।
दसन सँवारे मधुर वचन से, मधु बरसाया;
बदन - इंदु का विभव कपोलों पर झलकाया।
कोकिल - कंठी बनो कलित कंठता दिखाई;
अंग-अंग में भरी लोक की ललित लुनाई।
हाव-भाव विभ्रम विलास से पल-पल विलसी;
बनी सरसता-रता लोक-मोहकता मिल-सी।
अलंकार - से लसे चारु चेटक कर पाया;
पग-नूपुर को बजा मोहनी मंत्र जगाया।
पर न सफलता मिली, कामना हुई न पूरी;
प्रिय वश में कब हुआ, वासना रही अधूरी।

विना प्रेम में पगे बही कब रस की धारा;
कल्पलता - सम फलद बना कब जीवन सारा।
अहंभाव के तजे स्वरुचि - ममता के छोड़े;
गृह बनता है स्वर्ग स्वार्थ से नाता तोड़े।
जहाँ प्रीति के साथ विमल मानस है रहता;
वहाँ सदा है मोद - मंद - मलयानिल बहता।
यह जाने सुख-सेज सुमन से गई सजाई;
नंदन-वन-सी छटा सकल क्षिति तल में छाई।
विभु विभूति से भरी भाव-भव-तिय का भाया;
किए हृदय का दान हृदय प्रियतम का पाया।

वितर्क

किंशुक की लालिमा कालिमा से न बची है;
कलित - काकलीमयी कलमुँही गई रची है।
रसिक-प्रवर रसलीन परम-प्रेमिक है, तो भी;
मधुकर है मद-मत्त महा - चंचल मधु - लोभी।
लाल-लाल कमनीय-कुसुम-कुल-शोभित सेमल;
लाता है रस-हीन विहग वंचक अरुचिर फल।
सरस मंद-गति मधुर-मलय-मारुत है होता;
किंतु मदन-आवेग-बीज उर में है बोता।
चंद-चाँदनी चमक-दमक है चारु दिखाती;
पर बिधुरा को बार-बार है व्यथित बनाती।

है कुसुमाकर रस-निकेत नव - जीवन-दाता ;
किंतु है महा मत्त रुज भवन मोह-विधाता।
यह क्या है ? क्या है विधि अविधि ? या विधान स्वाधीनता ;
अथवा गुण-अवगुण गहनता या भव-अनुभव-हीनता।

कुल-ललना

आँख में लज्जा हो ऐसी,
फाड़ जो परदों को फेंके ;
राह जो बुरे तेवरों की
पहाड़ी घाटी बन छेंके।

चाँद-सा मुखड़ा ऐसा हो,
न जिस पर हों धब्बे काले ;
चाँदनी उससे वह छिटके,
सुधा जो वसुधा पर ढाले।

हँसे, तो वह बिजली चमके,
गिरे जो पापी के सर पर ;
बहे उससे वह रस - धारा,
करे जो खुलती आँखे तर।

कान सीपो - जैसे सुंदर,
मैल से सदा रहे डरते ;
बड़ी ही सुंदर बातों के
मोतियों से होवें भरते।

हिलाएँ जो वे होठों को
फूल तो मुँह से झड़ पावे ;
रहे जिसमें ऐसी रंगत,
काठ उकठा भी फल लावे।

कलेजा उनका कमलों-सा
खुले में खिले रंग लावे ;
दिशा जिससे मह-मह महके,
रमा जिसमे घर कर पावे।

रहे जी में सब दिन बहती
देश-ममता की वह धारा ;
वेग से जिसके बह जावे
जमा कूड़ा-करकट सारा।

लगे निजता इतनी मीठी,
परायापन इतना कड़वा
कि जिससे ग्लास काँच के ले
न फेंकें गंगा-जल-गड़वा।

अलग जो कर दे पय पानी,
हंस की-सी वे चालें चलें ;
जहाँ अँधियाला दिखलावे,
वहाँ पर दीपक जैसी बलें।

सदा अपने हाथों में ले
लोक-हित-फूलों की डाली ;

कुलवती ललनाएँ रख ले
लाल के मुखड़े की लाली।

शक्ति

प्रेम का वह अनुपम उद्यान,
जहाँ थे भाव - कुसुम कमनीय,
सुरभि थी जिसकी भुवन - विभूति,
मंजुता भव - जन - अनुभवनीय,
हो रहा है वह क्यो छवि-हीन,
छिना क्यों उसका सरस विकास;
बना क्यो अमनोरजन - हेतु
विमोहक उसका विविध विलास?
रहा जो मानस - शुचिता - धाम,
रहे बहते जिसमें रस - सोत,
मिले जिसमें मोती अनमोल,
भर रहे है क्यों उसमे पोत?
वचन जो करते बहुत विमुग्ध,
सुधा - रस का था जिसमें वास,
मिल रहा है क्यो उसमें नित्य
अवांछित असरसता - आभास?

सरलता - मृदुता - मंजुल - बेलि ,
हृदय - रंजन था जिसका रंग ;
बन रही है किसलिये अकांत
मंजु-मन मधु-ऋतु का तज संग।
हो गई गरल - वलित क्यों आज
सुधा - सिंचित सुंदर अनुरक्ति ;
बनी क्यों कुसुम - समान कठोर
कुसुम - जैसी कोमलतम शक्ति।

परिवर्तन

वासनाएँ होवें सुरभित ,
कामनाएँ हों मंजुलतम ;
भावनाएँ हों भाव - भरित ,
कल्पनाएँ हों कुसुमोपम।
कमल-मुख सदा मिले विकसित ,
कालिमा लगे न कुम्हलाए ;
नयन रस - भरे रहें, मोती
बूँद आँसू की बन जाए।
हँसी बिजली - जैसी चमके ,
किंतु सरसे हो रस - धारा ;

दाँत कोई क्यो गड़ जाए
बने मोती - जैसा प्यारा ।
भुजा क्यों पाश रहे बनती ,
ललित लतिका - सी कहलावे ;
रहे माखन - सा मृदुल हृदय ,
कभी पत्थर क्यो हो जावे ।
पिना जो है सुर - सरिता का ,
चाल पापी की वह न चले ;
पॉव सरसीरुह - सा कहला
क्यो कलेजा कोई कुचले ।
बने नवनी - सा पवि मानस ,
सुधा - रस - पूरित पावक तन ;
लगे काँटे कुसुमों - जैसे ,
प्रभो, ऐसा हो परिवर्तन ।

सहेली

तो मानवता-वदन विकच किस भॉति मिलेगा ,
सुमतिदायिनी मति जो बनती है मतवाली ;
कैसे तो न अमंजु मजु मानसता होगी ,
जो मायामय बने मधुरतम मानसवाली ।

तो कैसे सिर सकल सरस साधें न धुनेगी,
सुखविधायिनी जो विधान सुविधा न बरेगी;
हित - तरु हो पल्लवित फल - प्रसू कैसे होगा,
परम हितरता अहित - बीज जो वपन करेगी।

तो दृग-जल से सिक्त क्यों न सहृदयता होगी,
परम सहृदया हृदय - हीन जो हो जाएगी;
किसका वदन विलोक सदयता दिन बीतेंगे,
दयामयी जो दया - हीनता दिखलाएगी।

कैसे तो न अपूत प्रीति - पावनता होगी,
जो जीवन - सहचरी नीति बन जाय पहेली;
कैसे तो न प्रतीति - रहित वसुधातल होगा,
जो बतलाती रहे सुरा को सुधा सहेली।

संजीवन रस

सफलता-सूत्र

दूर कर अवनी - तल - तम - तोम ,
नमी - तामस का कर संहार ;
दलन कर दानव - दल का व्यूह
भानु करता है प्रभा - प्रसार ।

प्रतिदिवस कला - हानि अवलोक
कलानिधि होता नहीं सशंक ;
समय पर सकल कला कर लाभ
सरस करता है भूतल - अंक ।

वायु से ताड़ित हो बहु बार
टला कब वारिवाह गंभीर ;
सघनता कर संचय सब काल
बरसता है वसुधा पर नीर ।

विटप - कुल होकर पत्र - विहीन ,
बना कुसुमाकर को अनुकूल ;
पुनः पाता है बहु कमनीय
नवल, श्यामल दल औ' फल-फूल ।

शोक हर शोकित-लोक अशोक ,
सहन कर ललना - पाद - प्रहार ;
पहनता है तज अविकच भाव
विकच सुमनों का सुंदर हार ।

धीर धर, ले धरती अवलंब ,
अधिक नुच कट-छँटकर बहु बार ,
पद-दलित प्रतिदिन हो - हो दूब
पनपती है रख पानिप - प्यार ।

कुसुम-तरु - कंटक को अवलोक
समाकुल होता नहीं मिलिंद ;
सफलता पाता है सब काल
छिन्न हो कदली - पादप - वृंद ।

टले हैं करतब हिम बल देख
विघ्न - बाधा कृमि-कुल का व्यूह ;
सहमता है पौरुष - तम देख
विफलता गृह - मक्षिका - समूह ।

हुई जिसको अवगत यह बात ,
सका यह मर्म मनुज जो जान ,
मिली जिसको अनुभूति - विभूति ,
हुआ जिसको भव - हित का ज्ञान ।

सजाने को जीवन कल - कंठ
कर सुयश - सौरभ का विस्तार;

वही ले साहस-सुमन-समूह
सफलता का गूँधेगा हार।

सफल लोक

विकसित, कुसुमित लता कंटकित है दिखलाती;
रुधिर-रहित है नहीं पूत पय-पूरित छाती।
रस से भरे रसाल-मध्य है बीए होते,
मिले कहाँ मल-हीन सलिल के सुंदर सोते।
सुख-दुख का है साथ, तेज-तम मिले हुए हैं;
कीच बीच कमनीय कमल-कुल खिले हुए हैं।
तिमिरमयी रजनी प्रभात-आभा है लाती;
पा वसंत रस-हीन तरु-लता है सरसाती।
नियति नियम है यही, यही विधि की है लीला;
नव-नव-केलि-कला-निकेत है नभतल नीला।
सफल लोक है वही, काल-गति जो अवलोके;
रखे न प्रिय फल-चाह बीज विष-तरु के बोके।
कभी कुलिश हो, कभी कुसुम-कोमल बन जावे;
विधु-सा मधुर विकास, तपन-सा ताप दिखावे।
वारिधि-सा गंभीर, धीर, मर्यादित होवे;
सुरसरि-सलिल-समान मलिन मानव-मल धोवे।

मानस होवे सकल गौरवित गुण - तरु-थाला ;
उर पर विलसे रुचिर नीति-सुमनावलि-माला।
इस रहस्य को जान बन प्रकृति-देवि-उपासी ;
हों प्रवास - सुख - सुखित प्रवासी भारतवासी।

युवक

जाति - आशा - निशि-मंजु-मयंक,
कामना-लतिका - कुसुम - कलाप;
युवक है लोक-कालिमा-काल,
देश - कमनीय - कंठ - आलाप।

जगाता है नव-जीवन-ज्योति
राग - आरंजित जिसका गात ;
लोक-लोचन का है जो ओक,
युवक है वह भव-भव्य-प्रभात।

सुमनता है जिसकी स्वर्गीय,
सफलता वसुधा-सिद्धि-विधान,
मिली जिसमे मोहकता दिव्य
युवक है वह महान उद्यान।

बने महिमा - मंडित अवनीप
दे जिसे स्व-मुकुट-मंडन-मान ;

अचल है जिसकी अंतर्ज्योति,
युवक है वह महि-रत्न महान।

बहा वसुधा पर सुधा-प्रवाह,
बन सका जो मंडन भव शीश;
तिमिर में भरता है जो भूति,
युवक है वह राका-रजनीश।

ललित लय जिसकी है प्रलयाग्नि,
या परम - द्रवण-शील-नवनीत;
भरित है जिसमें विजयोल्लास,
युवक है वह स्वदेश-संगीत।

नरक जिससे बनता है स्वर्ग,
मरु महीतल नंदन-उद्यान;
कल्पतरु-सम कमनीय करील,
युवक है वह अनुभूत विधान।

प्रबल है जिसका हृदयोल्लास
उदधि-उत्ताल - तरंग - समान;
पवि-पतन है जिसका विक्षोभ,
युवक है वह प्रचंड उत्थान।

दग्ध कर शिर पर पड़ उर वेध
दुर्जनों का करता है अंत;
भयंकर प्रलय-भानु, यम - दंड,
युवक है काल-सर्प-विष-दंत।

प्रलय-पावक का प्रबल प्रकोप,
अग्नि-गिरि का ज्वलत उद्गार;
त्रिलोचन - अनल-वमन-रत-नेत्र,
युवक है मूर्तिमंत संहार।

जीवन-संग्राम

जीवन-रण-नाद

सभी चाहता है कि चमके सितारा;
रहे सब जगह रंग रहता हमारा।
पलक मारते काम हो जाय सारा;
जगे भाग का सब दिनों हो सहारा।
सँवरता रहे घर सुखों के सहारे;
रहे फूल बनते दहकते अँगारे।

किसे है नहीं चाह, आराम पाएँ;
उमगों - भरे जीत के गीत गाएँ।
बड़ी धूम से धाक अपनी बँधाएँ;
बड़े घाघ को उँगलियों पर नचाएँ।
खिले फूल - जैसा खिलें, रंग लाएँ;
अँधेरे घरों में चमकते दिखाएँ।

मगर चाह से कुछ कभी है न होना;
अगर कोई अपनी कसर है न खोना।
फलों से न वह किस तरह हाथ धोता;
रहा बीज को जो कि ऊसर में बोता।

नही काम की है लगन जिसमें पाती ;
कमाई उसे है अँगूठा दिखाती।
बड़े दिन-ब-दिन जो बने जा रहे है,
अमन-चैन के गीत जो गा रहे हैं,
हुनर से भरे जो कि दिखला रहे हैं,
जिन्हें आज फूला-फला पा रहे है,
बड़े-से-बड़े काम करके है छोड़े ;
उन्होंने उचक करके तारे है तोड़े।
पसीना गिरे जो कि लोहू गिरावे ;
पड़े काम सर को गँवा काम आवें।
कहा जाय जो कुछ, वही कर दिखावे ;
समय आ गए जान पर खेल जावे।
बता दीजिए, हममे कितने है ऐसे ;
भला फिर नही खायँगे मुँह की कैसे ?'
सदा आँख के सामने हो उजाला ;
बने बात बिगड़ी, रहे बोलबाला।
सगे हों सगे, हो भरा प्यार-प्याला ;
खुले खोलने से सभी बद ताला।
यही धुन है, पर हाथ में है न ताली ;
रहेगी भला किस तरह मुँह की लाली।
रुके काम आकाश में दौड़ जावें ;
लगा ठोकरें पर्वतो को गिरावें।

वनों को खँगाले, धरा को हिलावें;
उतरकर समुद्रो मे हल-चल मचावें।
न जब रह गए जाति में वीर ऐसे;
रसातल चले जायँगे तब न कैसे?

कभी भाग ऐसा हमारा न फूटा;
गया घर कभा यो किसी का न लूटा।
कभी इस तरह जाति का सिर न टूटा;
कभी साथियो का न यो साथ छूटा।
मगर आज भा आँख है खुल न पाती;
न फटनी दिखानी है पत्थर को छाती।

हमें आज है कौन-सा दुख न मिलता;
छिनीं आँख की पुनलियाँ, मुँह है सिलता।
खुले आग हम पर सगा है उगिलता;
मगर हिल गए भा नहीं दिल है हिलता।
कलपतो को देखे नहा जी कलपता;
कलेजा कढे है कलेजा न कँपता।

चले बात, जो हैं हमारे कहाते;
वही आज है घर हमारे ढहाते।
जिन्हे चाहिए था कि आँसू बहाते;
हमारे लहू से वही हैं नहाते।
बहुत डगमगा है रहा जाति-बेड़ा;
लगा मुँह पर उनके न अब तक थपेड़ा।

किसी में है धुन धाँधली की समाई ;
लगी है किसी के कलेजे मे काई।
किसी की समझ को गई छू है बाई ;
किसी की सनक है नया रंग लाई।
कहे किससे क्या जाय दुख क्यों अँगेजा ;
बिपत कहते आता है मुँह को कलेजा।
सभी जातियों को है जिसने जगाया ;
जगी जोत से है भरी जिसकी काया।
नरक को भी जिसने सरग है बनाया ;
कमल जिसने है ऊसरो में खिलाया।
नहीं रह सकेगी जो वह जाति जीती ;
तो दुनिया रहेगी लहू - घूँट पीती।
विना जल कमल है न खिलते दिखाते ;
विना जड़ नही पेड़ फल-फूल लाते।
रहे हाथ का जो कि पारस गँवाते ;
उन्हे देख पाया न सोना बनाते।
नपेगा गला जाति - गरदन नपाए ;
न होगा भला आग घर में लगाए।
कई सौ बरस से यही हो रहा है ;
हमें भाग बिगडा हुआ खो रहा है।
इधर सुध गँवाकर सुदिन सो रहा है ;
उधर देख हमको समय रो रहा है।

तो दिन जाति का और ही आज होता ;
हमारा कुदिन जो नहीं आग बोता।
उठो हिंदुओ, धाक अपनी जमा लो ;
सचाई के बल से बला सिर की टालो।
सँभलकर बहकते दिलों को सँभालो ;
बिपत में पड़ी जाति अपनी बचा लो।
विजय का घहरता रहेगा नगारा ;
फहरता रहेगा फरेरा तुम्हारा।

विविध रचनावली

कवींद्र-पंचक

महाचमत्कारक, लोल - लोचना,
विचार - धारा - वलिता, विचक्षणा,
चतुर्मुखी, रोचक - चित्र - चित्रिता,
विचित्र है केशव-चित्त-चातुरी।

समुद्र - उत्ताल - तरंग - सी लसी,
सुमेरु के शृंग - समान शोभिता,
विरक्ति - हीना, अनुरक्ति से भरी,
अचिंत्य है केशव - उक्ति - उच्चता।

सुधा - समाना, सरसा, मनोहरा,
सुरापगा - सी सितता - विभूषिता,
सिता - समा है वसुधा विकासिनी,
सुहासिनी केशव - कीर्त्ति - सुंदरी।

बड़ी रसीली, मधु माधुरीमयी,
लसी लता - सी, सरि - सी तरंगिता,
प्रसून - सी है लसिता विकासिता,
कलामयी केशव - कांत - कल्पना।

नहीं बनाती किसको विमोहिता,
नहीं बढ़ाती किसकी विमुग्धता;
विदग्धता आकलिता सुझकृता,
अलंकृता केशव की पदावली।

स्वागत-गान

(१)

आज कैसा सुंदर दिन आया।
जिसकी सुंदरता की जन-मन-मुकुर मे पड़ी छाया।
काशी धाम-समान दूसरा धर्म-पीठ न सुनाया;
कहाॅ विलसती है, निशि-वासर विश्वनाथ की माया।
कौन विविध विद्या-विवेक का सिद्ध पीठ कहलाया;
बुद्धदेव ने धर्म-चक्र रच कहाँ सिद्धि-फल पाया।
सुरसरि-पावन, सुरपुर-सम यह पुर क्यों गया सजाया;
क्यो महिमामय काशिराज को यहाॅ गया पधराया।
देश-देश से आज क्या वही विबुधो का दल आया;
गिरादेवि अकम में जिसकी पली कीर्तिमय काया।
पलक-पाँवड़ा जन-जन ने स्वागत के लिये बिछाया;
पाकर ऐसे विबुध यह नगर फूला नहीं समाया।
उसने उनको चारु चाव का चंदन तिलक लगाया;
प्रेम-सहित आनद-कुसुम का गजरा गूॅथ पिन्हाया।

विद्या-बल से टले अविद्या, हो भव का मनभाया ;
इस महान शिक्षा-सम्मेलन का हो सुयश सवाया।

(२)

सादर हम स्वागत करते हैं।
बरसाने के लिये कल कुसुम मंजुल अञ्जलि में भरते हैं।
अतरज्योति जगाकर उसकी क्यो न जाय आरती उतारी ;
जिस प्रभु की प्रभुता अवलोके हुई जन-विबुधता बलिहारी।
जिसने बन आनद-वन-अधिप मन को आनदित कर डाला ;
क्यों न निछावर नयन करे उस पर अपनी मुक्ता की माला।

(३)

आज खुल गया भाग हमारा।
जहाँ दिखाते थे दुख-सोते, बही वहाँ रस-धारा।
दिन फिर गए पड़ी धरती के, सूखा पौधा फूला ;
हुआ आज जंगल में मंगल, मिला सुख समय भूला।
जो श्रीमान् श्रीमती को ले करके कृपा पधारे ;
तो हुन बरस गया ऊसर में, काम सध गए सारे।
ऐसे ही सुंदर दिन आवें, सुयश रहे जग छाया ;
सदा सब सुजन जन के सिर पर बना रहे प्रभु-साया।

(४)

हम हैं प्रभु को शीश नवाते।
उमग-उमग स्वागत करते है, फूले नही समाते।
बड़े भाग से ऐसे अवसर कभी - कभी है आते ;
लघु जन पर श्रीमानो-जैसे जन हैं कृपा दिखाते।

नाम आपका ले जीते हैं, कीर्ति आपकी गाते ;
मिले आपका बल पलते है, सोया भाग जगाते।
हाथ जोड़कर मगलमय से हम है यही मनाते ;
फूलें-फलें, सुयश ले जीवे, रहे सकल सुख पाते।

समाज

बजाए वह वीणा रमणीय,
मधुरतम हो जिसकी झकार ;
मूर्च्छनाओं मे हो वह मोह,
मुग्ध हो जिसको सुन संसार।

बताए वह अनुपमतम सूत्र,
सकल पद जिसके हों बहु पूत ;
साधनाओ में हो वह मत्र,
सिद्धियाँ जिसकी हो अनुभूत।

विलसती हो जिसमे सब काल
व्यजना-लतिका बन छविमान ;
खिले हो जिसमें पुलक-प्रसून,
रचे वह रुचिर-भाव-उद्यान।

साध सीपों को दे बर बूँद
बनाए गौरव मुक्तावान ;
करे जीवन - विहीन को पीन
जलद-सम करके जीवन-दान।

कांति जिसकी हो भव कमनीय,
बदन पर जिसके हो बहु शांति ;
भरे हो जिसमें हितकर भाव,
भरत - भूतल में हो वह क्रांति।

सहेली

उलझे जाए सुलझ, भूलतो राह बताए ;
मुँह न चिढाए, बने रँगरलियाँ कर प्यारी।
कभी गुदगुदाए इतना न कि आँसू आए ;
सदा सींचती रहे हृदयतल की फुलवारी।
रहे खीज में रीझ कलेजे मे कोमलता ;
सुख देखे हो सुखी, दुखों में दुखी दिखाए ।
जो बिजली-सी कौंध-कौंध दहलाए दिल को ;
तो बादल की तरह पिघलकर रस बरसाए।
मीठी बातें कहे, चुटकियाँ ले-ले छेड़े ;
गाए सुंदर गीत कहानी चुनी सुनाए।
दे सीखे हित-भरी, बंद आँखो को खोले ;
बड़े ढंग से बहुत ऊबता जी बहलाए।
मचल-मचलकर नई रंगतें रहे जमाती,
बेलमाती ही रहे मनों को बन अलबेली।
आँखों मे हो प्यार, फूल मुँह से झड़ पाए,
हँस-हँस जी की कली खिलाती रहे सहेली।

राजस्थान

जहाँ वीरता मूर्तिमंत हो हरती थी भूतल का भार ,
जहाँ धीरता हो पाती थी धर्म-धुरीण-कंठ का हार ,
जहाँ जाति-हित-बलि-वेदी पर सदा वीर होते बलिदान ,
जहाँ देश का प्रेम बना था सुरपुर का सुखमय सोपान ,
जिस अवनी के बाल-वृंद ने काटे बलवानो के कान ,
चमकी जहाँ वीर बालाएँ रणभू मे करवाल-समान ,
किए जहाँ के नृपति-कुल-तिलक ने कितने लोकोत्तर काम ,
जिस लीलामय रंगअवनि में उपजे नाना लोक ललाम ,
वहाँ आज क्यों सुन पड़ता है कलह-कंठ का प्रबल निनाद ;
है बन रहा वहाँ पर प्रतिदिन क्यो प्रपञ्चियो का प्रासाद ?
क्यो कायरता थिरक रही है गा-गाकर विलासिता-गान ?
क्यों गौरव है रौरव बनता कर मदांधता-मधु का पान ?
जिसके एक-एक रज-कण पर लगी राजपूतो की छाप ,
जिसका वातावरण समझता रण में पीठ दिखाना पाप ,
जिसके पत्ते मर्मर रव कर रहे पढ़ाते प्रभुता-पाठ ,
जिसके जीवन-सचारण से हरित हुआ था उकठा काठ ,
अहह ! आज किसलिये बन गया वह निर्जीवों का सिरमौर ;
गरल वमन करता है क्यों वह, सुधा-भरित था जिसका कौर ।
सुने धर्म का नाम हृदय में उसके क्यों होती है दाह ?
क्यों बहता है मद-प्रवाह में, क्यो उसकी पंकिल है राह ?

उठा-उठाकर अपने शिर को व्यथित अर्वली वारंवार
अवलोकन करता है घिरता प्रिय प्रदेश में तिमिर अपार।
कभी विविध निर्झर-मिष उसके दृग से बहती है जल-धार,
कभी धरा में धस जाता है वह विलोककर अत्याचार।
परम सरसता-सहित प्रवाहित सरस्वती का पीकर आप
दूर किया था मरुअवनी ने अपने अंतर का बहु ताप।
किंतु आज निज मातृभूमि की अति दयनीय दशा अवलोक
प्रतिपल प्रतपित हो जाती है, शोकित बन जाता है ओक।
दूर खड़ा चित्तौड़-दुर्ग भी दिन-दिन होती दुर्गति देख
चिंतित हो-होकर पढ़ता है निज कुंठित कपाल का लेख।
पुष्कर-सलिल-लहरियो के मिष बार-बार बनकर बहु लोल
विदित व्यथा अपनी करता है, किंतु नहीं मुख सकता खोल।
उत्साहित प्रतिपल करते हैं किसी शक्ति के कुछ संकेत;
सुन पड़ती है अति अपूर्व ध्वनि, क्यों हो जाता नहीं सचेत।
किसी देव की दिव्य ज्योतियाँ है तन में कर रही प्रवेश;
मानस के शुचि-भाव-मुकुर मे प्रतिबिंबित है भव्य आदेश।
जाग-जाग, तू बहुत सो चुका, अब तो अपने बल को तोल;
तिमिर टल चला, सूरज निकला, खोल-खोल, आँखों को खोल।
भारतमाता मुग्ध खड़ी है, जन-जन-मन है आशावान;
भारत तेरा बदन देखता है आकुल बन राजस्थान।

विडंबना

कंटकित हो क्यो कुसुमित सेज,
बने क्यों अकलित कुसुम - कलाप ;
किसी की विलसित ललित उमंग
बने क्यों क्रंदन-वलित विलाप ।

हरें क्यो अलकावलि का मान
किसी के पलित पुरातन केश ;
मधुरतम - स्वर - लालायित - कान
सुने क्यों नीरस कंठ-निदेश ।

दले क्यों कोई अमृदुल वृत्ति
किसी के कोमल कितने भाव ;
रोक दे क्यो सुख - सरस - प्रवाह
मरुमहीतल - सम शुष्क स्वभाव ।

जराजित, मोह - राहु - अभिभूत
रहे क्यो यौवन-मजु-मयंक ;
हरे क्यो नवला - हृदय - विनोद
किसी कंकाल भूत का अंक ।

सुनाते है यम का संदेश
श्वेत हो - होकर जिसके बाल ;
विवश को क्यों लेवे वह बाँध
ग्रंथि-बधन का बधन डाल ।

कुचल दे क्यों कुसुमायुध हीन
किसी की विकच कामना-बेलि ;
करे क्यों युवती - सुख का लोप
किसी गत - यौवन - जन की केलि ।

काल - बलि - भूत मिलिंद निमित्त
कमलिनी का क्यों हो बलिदान,
करे क्यों दलित कुसुम के हेतु
नवलतम कलिका जीवन - दान ।

काठ उकठा क्यों हो उत्कंठ
वनज-सुम विकसित वदन विलोक ;
बने क्यों अतन - बाण से विद्ध
गलित तन नूतन तन अवलोक ।

गए जिसके रस-सोते सूख,
लालसा से क्यों हो वह लोल,
करे क्यों मदनमयी को दग्ध
काम - विरहित का काम - कलोल ।

राग क्यों हो विराग - आधार,
रहे क्यों अनुरंजन से दूर ;
बने क्यों किसी भाल का काल
असुंदर हो सुंदर सिंदूर ।

विजयिनी विजया

विजया

कलह-फूट को तजे, बैर का बीज न बोवे;
जपे मेल का मंत्र, मलिनता मन की खोवे।
बंधु-प्रीति में बँधे, बने निजता का नेमी;
निज भाषा, निज देश-वेश का होवे प्रेमी।
पाकर सजीवता-जय-करी हित-वितान जग में तने;
जन जाति सकल अविवेक पर विजया बल विजयी बने।

विजय-विभूति

तेजमान हो जाय तेजहत पल-पल पाकर तेज अपार;
अधीभूत अवनि पर होवे ज्योति-पुंज का प्रबल पसार।
महिमा-हीन बने महिमामय, मिले लोक का विभव महान;
होकर सबल अबल बन जाए प्रबल प्रभंजन-तनय-समान।
मिले लोक-बल जन कर पावे पार परम-दुख-पारावार;
रोके पंथ चूर हो जावे पर्वत सहकर प्रबल प्रहार।

सेतु आपदा-सरि का होवे कल कौशल घन पटल समीर ;
बने वीर रिपु बन दावानल कूट नीति पावकता नीर।
हो न सभीत पुरंदर-पवि से, कंपित कर पावे न पिनाक ;
विचलित हो न समर में कोई महाकाल की भी सुन हाँक।
जीवनमय जनता-जीवन हो, कर्म योगमय हो सब योग ;
किसी पियूष-पाणि से होवे दूर जाति-जर्जर-तन-रोग।
सबके उर मे भाग जगे वह, जो हो कार्य-सिद्धि का यंत्र ;
हो स्वतंत्रताओ का साधन, सधे साधने से जो मंत्र।
भरत-सुअन-उर में भर जाए अभयंकरी अतुल अनुभूति ;
भूतिमान भारत बन जाए ले विजया से विजय-विभूति।

विजया-विभव

परम-गौरव - गरिमा - आगार ,
लोक - अभिनंदन, ललित - चरित्र ;
लाभदायक, लीला - आधार ,
सुर-सरित-सलिल - समान पवित्र।

बहु - मधुर - विविध - वाद्य-अवलंब ,
सुधामय - सरस - राग - आवास ;
कलित - लोकोत्तर - कला - निकेत ,
सुविलसित बहु स्वर्गीय विलास।

जाति - जीवन - आलय - आलोक,
कीर्ति - विटपावलि - वर - उद्यान;
मनोरम - चरित - मयूर - पयोद,
भाव-मूलक भव - सिद्धि - विधान।
मनुज - कुल - मूर्तिमान - उत्साह,
भरत - भू - समारोह - सिरमौर;
मंजु - उत्सव - समूह - सर्वस्व,
भावना - भाल भव्यतम खौर।
उमंगित पुलकित लसित अपार,
मंजु मुखरित सुरभित रस - धाम;
अलंकृत अंकित अमित विनोद,
विपुल आलोकित लोक - ललाम।
शरद कमनीय कलाधर कांत,
विकच सरसीरुह-सम सविकास;
कौन है यह रंजित नव राग,
अलौकिक विजय-विभूति-निवास।

उल्लास

उषा क्यों बहु अनुरंजित हुई
पहनकर अभिनंदन का साज;
प्रकृति के भव्य भाल का बिंदु
बना क्यों बाल - विभाकर आज।

किसलिये पारदमय हो गया
विमल नभतल का नील निचोल ;
विहँसकर देख रही है किसे
दिग्वधू अपना घूँघट खोल।

खिल गए किसका वदन विलोक
सरो में विलसे बहु अरविंद ;
बरसता है क्यो सुमन-समूह
प्रफुल्लित नाना पादप-वृंद।

रत्नमयं तारक-मिष क्यो हुआ
विधुमुखी रजनी-शिर का ताज ;
बिछ गई छिति पर चादर धुली
किसलिये कलित कौमुदी-व्याज।

विचरता फिरता है क्यो मोद
मद-चल सुरभित सरस समीर ;
मोहता है क्यो ब्रज सब ओर
किसी मजुल पग का मजीर।

हँस रहे है सज्जित ध्वज लिए
आगमन से किसके आवास ;
विपुल विकसित है जनता बनी
किस विजयिनी का देख विकास।

विजया

(१)

देश - यश - मंदिर - मनोरम शिखर पर
शाका कर गौरव - पताका-सी फहर जा ;
वीरता - विहीन को बना के वंदनीय वीर
कायर को केसरी-किशोर-जैसा कर जा।
'हरिऔध' भारत-धरा को दिव्य ज्योति दे दे,
तम - पुंज तिमिर - निमज्जितों का हर जा ;
आई विजये, तो तू विजयिनी बना जा क्यों न,
विजय - विभूति जाति-भावना मे भर जा।

(२)

आती है तो मृतक जनो मे जीवन भर दे ;
धीर, वीर, गंभीर गौरवित सबको कर दे।
फैला दे वह दिव्य ज्योति, जिससे तम भागे ;
बंद हुए दृग खुले, सो गई जनता जागे।
जिसे लाभ कर दुख टले, सुख-प्रसून घर-घर खिले ;
विजये, विजय-विभूति वह विजयी भारत को मिले।

दीप-मालिका-दीप्ति

दीपावली

(१)

वसुधा हँसी, लसी दिवि दारा,
विलसित शरद सुधा-निधि द्वारा।
हुआ विभासित नील गगनतल,
उच्च हिमालय मंजुल अंचल,
काश - प्रसून - समूह समुज्वल,
कमला-कलित सकल पंकज-दल,
चढ़ा पादपावलि पर पारा।
अमल-धवल आभाओं से लस,
बहा दिशाओ में अनुपम रस,
विभा गई तृण वीरुध में बस,
हुआ उमगित मानव - मानस,
चमका जगत-विलोचन-तारा।
मिले विमलता परम मनोरम,
बने नगर, पुर, ग्राम दिव्यतम,

सुधा - धवल मंदिर सुर-पुर-सम,
स्वच्छ सलिल सर-सरित समुत्तम,
हुआ रजत-निभ रज-कण सारा।
बना काल को कलित कांतिधर,
अमा-निशा को आलोकित कर,
पावस - जनित कालिमाएँ हर,
दमक दीप - मालाओं में भर
घर-घर बही ज्योति की धारा।

दीपावली

(२)

तम-पूरित इस अमा निशा में कौन लोक से आई तू;
आलोकित कर अवनी-तल को कौन सँदेसा लाई तू।
दीपावलि को लिए करों में, पहने कुसुमावलि-माला;
किसे खोजती है बन आकुल, पीकर किस रस का प्याला?
विलसित गगन-तारकावलि में जिसकी कला दिखाती है;
क्या तू उसके लिये आरती अति ही ललित सजाती है?
या रंजिनी रमा-रंजन-हित यह आयोजन है सारा;
या जागती ज्योति की तुझमें है जगमगा रही धारा।
या तू है विधु-रुचिर-सहचरी, विरहानल में जलती है;
विपुल थलों में विविध रूप धर जी की जलन निकलती है।

या तू शरद-विदित सितता है, यथासमय दिखलाई है ;
राका-निशि की बची असितता को सित करने आई है।
या तू भारत के भवनो को, कोनों को आलोकित कर
खोज रही है उस वैभव को, जो था विश्व-विमोहित-कर।
अथवा खोल अमित नयनो को तू है यह अवलोक रही ;
क्या है वह गौरव भारत का, क्या है भारत-भूमि वही।
तू है नगर-नगर, पुर-पुर में, ग्राम-ग्राम मे घूम रही ;
चाहक चाह-भरे लोचन को चाव-सहित है चूम रही।
दीपमालिके ! दीपावलि से क्या तू ज्योति जगावेगी ;
क्या भव सफल-भूत-भावो से भारत-तिमिर भगावेगी।

दीप-माला

दीपमालिके ! दीपावलि ले आती हो, तो आ जाओ ;
घूम तिमिर-पूरित भारत मे भारतीयता दिखलाओ।
जो आलोकवान है बनते, उनमें है आलोक नहीं ;
ज्योति-भरे उनके लोचन है, जो सकते अवलोक नहीं।
है हिंदू-कुल-कलस कहाते, सूझ बहुत ही है आला,
किंतु विलोक नही सकते, वे हिंदू-अंतर की ज्वाला।
ऊँची ऑख सदा रखते है, ऊँची बातें हैं प्यारी,
पर नीची गरदन हिंदू की है उनकी पुलकितकारी।
है अनुराग देश-रागो से, भारतीयता है भाती ;

देख छुरी चलती स्वजनों पर है न कभी छिलती छाती !
देशबंधुता के प्रेमिक है, है समता के दीवाने,
किंतु तोड़ते है तपाक से जाति-प्रेम के पैमाने।
नाश पुरातनता करती है, धर्म-धाँधली होती है;
बीज अमानवता का उर में चित-पामरता बोती है।
है प्रवाह बहता प्रपंच का, परम कलंकित काया है;
पेट है कपट-जाल बिछाता, जी में चोर समाया है।
ऐसे तम-अभिभूत जनों को अवलोके अकुलाता हूँ;
दीपमालिके ! तारावलि गिन कितनी रात बिताता हूँ।
तुम महती आलोकवती हो, बन अनुकूल तिमिर हर लो;
भारत-भूतल को पहले सा पुलकित, आलोकित कर लो।

दीवाली

चमकते तारे लाई हो,
फूल से सजकर आई हो;
देख लूँ क्यो न आँख-भर मै,
साल - भर पर दिखलाई हो।
ओस के कन किरनों को ले
गए मोती से है तोले;
दिशाएँ उजली है हो गई,
फूल हँसते हैं मुँह खोले।

धुल गया-सा है सारा थल,
विमल बनकर बहता है जल;
तुभा लेना है कानो को
थिरकती नदियो का कलकल।
बिछी सर मे सुथरी चादर
दूध की धारों मे धुलकर;
फबन फैली दिखलाती है
पेड़ पर, पत्तो-फूलो पर।
चमकती चाँदी की-सी है,
सब जगह जोत जगी-सी है;
ताल की उठती लहरो में
सुपेदी उफनाती-सी है।
समय का यह सुहावनापन
देखने आई हो बन-ठन;
या किसी अलबेले पर तुम
रही हो वार फबीलापन।
दिए लाखों बल जाएँगे,
दमकते नगर दिखाएँगे;
जगमगाएँगे सारे पुर,
गाँव सब जोत जगाएँगे।
बड़ी सुंदर, नीली, न्यारी
सँवारी सुथरी जरतारी;

सजाई हीरो से होगी
रात की चमकीली सारी।
उजाला घर - घर पसरेगा,
अँधेरापन भी निखरेगा;
अमावस पूनो होवेगी,
चाँद धरती पर उतरेगा।
समा दिखलाओगी आला,
भरोगी चावों का प्याला;
दिवाली, क्या न दूर होगा
देश मे छाया अँधियाला।

दीपावली के प्रति

कहाँ ऐसी छवि पाती हो;
जगमगाती क्यों आती हो।
हाथ में लाखों दीपक लिए क्यो ललकती दिखलाती हो।
सजी फूलो से रहती हो,
सुंदरी, सरसा, महती हो,
ज्योति - धारा में बहती हो,
न-जाने क्या-क्या कहती हो,
झलक किसकी है दृग में बसी, क्यों नहीं पलक लगाती हो।

चौगुने चावोंवाली हो,
किसी मद से मतवाली हो,
भाव-कुसुमों की डाली हो,
अति कलित कर की पाली हो,
मधुरिमा की कमनीय विभूति, मुग्धता-मंजुल-थाती हो।
तारकावलि - सी लसती हो,
वेलियों-सदृश विलसती हो,
उमंगों-भरी विहँसती हो,
मनों नयनों में बसती हो,
मनोहर प्रकृति-अंक में खेल कला-कुसुमालि खिलाती हो।
अमावस का तम हरती हो,
रजनि को रंजित करती हो,
प्रभा घर - घर में भरती हो,
विभा सब ओर वितरती हो,
टले जिससे भारत का तिमिर, क्यों न वह ज्योति जगाती हो।

अनुरोध

मंद-मंद आ देव-सदन को दिव - मंडल - सा दमका दो;
कनक-कलश को कांतिमान कर चंद्र-बिंब-सा चमका दो।
नभचुंबी प्रासाद-पंक्ति को प्रभा-पुंज-पूरित कर दो;
सुंदर सुधा-धवल धामों में मुग्धकरी आभा भर दो।
चारु चौरहे आलोकित कर लोक-लोचनों से खेलो;

गली-गली में ज्योति-जाल भर अति कमनीय कीर्ति ले लो।
तिमिरमयी निशि-अंक विलसती मंजुल दीपावलि द्वारा
तारक-खचित शरद्-नभतल का लाभ करो गौरव सारा।
विटपराजि में राजित हो-हो रंजित दल, फल, फूल करो,
कलित बना सर-सरित-कूल को ललित लहरियों में विहरो।
शीशों में बहु रूप रंग धर विविध छटाएँ दिखलाओ;
तरह-तरह के ज्योति-पुंज से जन-मन रंजन कर जाओ।
सरुचि बखेरो रुचिर रत्न-चय, बनो मंजु मुक्ता-माला;
छलक पिला दो भावुक जन को भाव-सुधा सुंदर प्याला।
किंतु कभी तुम दीपमालिके, भारत-दुख को मत भूलो;
उसके तिमिर-भरे मानस को कांतिमान कर से छू लो।

आकाश-दीप

अवनी-तल पर रहकर भी क्यों नभ-दीपक कहलाते हो;
किन पुनीत भावों से भरकर भावुकता दिखलाते हो।
क्या अनंत महिमामय प्रभु-पूजन-निमित्त तुम बलते हो;
अथवा निज अंतर्ज्वाला से अंतरिक्ष में जलते हो।
सहज भावनामय मानस के शांति-विधायक साधन हो;
अथवा अंधीभूत अंक के आलोकित अंतर्धन हो।
किसी भक्ति-परिपूरित जन के भक्ति-भाव के संबल हो;
अथवा किसी कौतुकी नर की कौतुक-प्रियता के फल हो।

ताराओं की भाँति चमककर लोचन को ललचाते हो;
सच कह दो, चुपचाप कौन-सा भेद किसे बतलाते हो।
किन पथिकों के नभ-तल-पथ में निशि तम मध्य सहारे हो;
खोज रहे हो किसको, किसकी आँखों के तुम तारे हो।

दीपमालिका

तुम्हे कभी भारत-भूतल में वह स्वच्छता दिखाती थी;
जिसे देख करके हिमगिरि की हिम-विभूति ललचाती थी।
अब है वह स्वच्छता कहाँ, क्या उसे खोजती फिरती हो;
क्या उसकी दुर्गति देखे ही गौरव-गिरि से गिरती हो।
कभी रमा थी परम मनोरम बन विराजती घर-घर में;
नगर-नगर था विभव-निकेतन, मोद-भरा था नर-नर मे।
गिरिवर रत्नराजि देते थे, धरा उगलती थी सोना;
चकित बनाता था कुबेर को प्रतिगृह का कोना-कोना।
भुवनमोहिनी उन विभूतियों को अब यहाँ न पाती हो;
उसे ढूँढ़ने ही को क्या तुम दीपावलि ले आती हो!
तम-मंजित है जन-जन का मन, आँख नहीं खुल पाती है;
उँजियाली में भी अंधो को अँधियाली दिखलाती है।
है प्रकाश की नहीं न्यूनता, तिमिर नही टल पाता है;
खड़े हुए बिजली के खभे, तो भी बढ़ता जाता है।
दीपमालिके! आई हो, तो दिव्य ज्योति धारण कर लो;
भारत ही का नहीं, भरत-सुत-मानस का तामस हर लो।

फाग राग

गुलाल की मूठ

(१)

खेलने होली आई आज,
न जाना होगा ऐसा खेल;
न थी जिससे मिलने की चाह,
हो गया उससे कैसे मेल !
लालिमा आँखों की जो बना,
ललक उससे क्यों सकती रूठ;
लाल ने मूठी में कर लिया
चला करके गुलाल की मूठ।

---

(२)

लालिमा नभ-तल पर थी लसी,
दिशा का था आरंजित भाल;
अरुण को करता था अनुरक्त
रंगिणी ऊषा कुंकुम थाल।

रागमय भव लोचन को बना
पसारे निज अनुरंजन हाथ;
बदन पर मले ललाम अबीर
क्षितिज पर विलसित था दिननाथ।

सकल तरु के किसलय कमनीय
अरुणिमा से थे मालामाल;
खेलकर होली ऋतुपति साथ
हो गए थे किंशुक-तरु लाल।

कुमकुमे थे बुल्ले बन गए,
घुल रहा था सरि-सर मे रंग;
विलसती थी पिचकारी लिए
ललित लीलामय लोल तरंग।

समा यह पुलकितकर अवलोक
हो रही थी मै विपुल निहाल;
अचानक लगा गया आ कौन
गाल पर मेरे मंजु गुलाल।

मुग्धा

कौन था वह, था किसका लाल,
क्यों गया मुझ पर जादू डाल!

भाल पर था कुंकुम का तिलक,
कपोलों पर बिथुरी थी अलक,
न पड़ती मुख अवलोके पलक,
छगती थी तन-छवि की छलक,
गले में विलसित थी वनमाल।

बज रहे थे मृदु, मंद मृदंग,
सुधामय थी स्वर-ताल-तरंग,
मुग्ध करती थी मधुर उमंग,
अवनि पर था अवतरित अनंग,
पुलकमय परम कांत था काल।

रंग था बरस रहा सब ओर,
सरसता छूती थी छिति-छोर,
ललकमय थी लोचन की कोर,
चितवनें लेती थीं चित चोर,
हँसी थी मोहक-मधुर-रसाल।

मल गया मुख में मंजु अबीर,
कर गया पुलकित सकल शरीर,
साथ लाकर रसिकों की भीर
गा गया सुंदर सरस कबीर,
डाल नयनों में गया गुलाल।

मधुर मधु

आ गया मधुर मनोहर काल।
बना भव नवल राग से मंजु, हो चला गगन-अवनि-तल लाल।

उषा हो ललित लालिमामयी
वहन करती है विमल विकास;
बनाता है बहु पुलकित उसे
बाल-रवि-लोहित - विभा - विलास।
दिग्वधू का शोभित हो गया अलौकिक दिव-कुंकुम से भाल।

सकल तरु किसलय-कलित अपार,
लता के दल कोमल कमनीय,
छिति विमोहक छवि के अवलंब,
कुसुम के रूप रंग रमणीय,
लालसाओं के हैं सर्वस्व, अरुणिमा के है मंजुल माल।

समय - मानस का नव अनुराग
हुआ विलसित धर विविध स्वरूप;
बन गया वर वसंत का विभव
छबीली होली छटा अनूप।
तरंगित कर चित सरस प्रवाह, लोचनों को कर प्रचुर निहाल।

उसी से है अनुरंजित रंग
कुमकुमों के तन का अवलेह;

मत्त लोचन की लाली चारु
चपल - ललना - ललकित - उर - नेह
बही गोरे गालों पर लगा बन रसिक-कर का रुचिर गुलाल।

गुलाल

उमगता, हँसती, भरित - उमंग
खेलने मै आई थी फाग;
न जाना था अबीर की मूठ
भरेगी रग - रग में अनुराग।

चौगुना कर देवेगी चाव
किसी की चितवन बन चित चोर;
रंग लावेगा कोई रंग
रंग मे मेरे तन को बोर।

सुनाकर लोक - विमोहन गान,
दिखाकर कुंकुम - रंजित - भाल,
कुमकुमे मार - मार कमनीय
विपुल पुलके अलबेले लाल।

समय दिखलाया अति अनुकूल,
मधु गई बरस, मधुमयी तान;
कर सकी विपुल उरों को मत्त
सरस रस - पूरित मृदु मुसुकान।

किंतु क्यों चित ले गई लपेट
किसी की चंचल लटपट चाल;
क्यों गई मैं अपने को भूल
मले मुखड़े पर मंजु गुलाल।

रँगीली

चाव में भर दिखला अनुराग
चला दी तुमने मूठ गुलाल;
चढ़ गया मेरे चित पर रंग,
युगल लोचन हो गए निहाल।

भर उछलते भावों से भूरि
दिया हाथों से रंग उछाल;
प्रवाहित हुई प्रमोद-तरंग,
हुआ सारा अंतस्तल लाल।

साध कर मंजुल, मोहन मंत्र
डाल दी तन पर विपुल अबीर;
हो गया रँगे चौगुना चारु
प्रेम का चिर अनुरंजित चीर।

न देखा मृदुल, मनोहर गात,
दिए कमनीय कुमकुमे मार;

फूट उसने दिखलाया रंग,
हुआ सरसित रस - पारावार।
उमगकर गाया मधुमय राग,
धरा पर बरस सुधा की धार
भर गई रग-रग में धुन मजु,
बज उठे तन-तंत्री के तार।

अश्रु-विसर्जन

देखकर भाल गुलाल - विहीन
चूर होता होली का चाव;
खिन्न हो मैने किया सवाल
कहाँ वह गया रँगीला भाव?
चुप रही, सकी नही कुछ बोल,
हो गए दोनो लोचन लाल;
चौंककर लिया कलेजा थाम,
दिया आँखों ने आँसू डाल।

युगलानंद

मैने मला गुलाल, उन्होने मूठ चलाई,
मैं मूठी में हुई, उन्होने आँख बचाई;

मैने छिड़का रंग, उन्होने ली पिचकारी,
मै रस-बस हो गई, बने वे रसिकविहारी।
मै अबीर ले बढी, कुमकुमे उनके टूटे,
मै नवबेली बनी, बन वे विलसित बूटे;
मेरी ताली बजी, उन्होने गाई होली,
मै विहँसी मुख मोड़, उन्होंने बोली बोली।
मैने छेड़ी बीन, उन्होने वेणु बजाया,
मेरी रंगत रही, उन्होंने रंग दिखाया;
मै उमंग में भरी, कलेजा उनका उछला,
मेरी भौहे तनी, उन्होने तेवर बदला।
मैने छीनी पाग, उन्होंने घूँघट टाला,
मैंने टोना किया, उन्होंने जादू डाला;
मै सनेह में सनी, बने वे प्रेम-बसेरे,
मै मोहन की हुई, हुए मनमोहन मेरे।

फाग

किसलिये कलित कुमकुमे मार
उषा को रवि करता है लाल;
मल रही है क्यों ऊषा आज
बाल-रवि-मुख पर मंजु गुलाल।

क्यों अरुण साथ खेलकर रंग
हुआ लोहित दिगंगना - गात;
उड़ाए किसके विपुल अबीर
बना आरंजित नभ अवदात।

फेंक किस मंजुल कर ने रंग
बनाया रंग - बिरंगा ओक;
क्यों मनों को करता है मुग्ध
लालिमा से विलसित हो लोक।

क्यों अधर में भरकर नवराग
अरुणिमा की बहती है धार;
वहन कर मारुत रक्त पराग
चला किसका करने शृंगार।

खिल रही कलिकाओं को छेड़,
मचाता है क्यों अलि उत्पात;
क्यों कुसुम - कुल ले-लेकर रंग
तितिलियों का रँगता है गात।

रसीली मंजरियाँ ले अंक
केलि-रत है क्यों रसिक रसाल;
किसलिये मधु से हो - हो मत्त
झूमती है मधूक की डाल।

ललित लतिकाओं का कर साथ
लाल हो - हो अनार - कचनार

क्यों दृगों को करते हैं लोल
पहन विकसित सुमनों का हार।
किसलिये नव लाली कर लाभ
बने ललकित लोचन के माल;
तरु-नवल-दल-गत सित-जल-विंदु
बेलि उर विलसित मुक्ता-माल।
क्यों हुआ रंग ढंग है और,
रंग लाया क्यों उमठा काठ;
किसलिये कोई गया उँडेल
पलासों पर मजीठ की माठ।
गिरा है रहा रँगीला कौन
सेमलों पर गुलाल का थाल;
लहरते सरित - सरोवर - मध्य
किसलिये बिछीं चादरें लाल।
क्या मिले कुसुमाकर - सा बंधु
हो गया मूर्तिमंत अनुराग;
या किसी लोक - लाल के साथ
खेलती है भव-ललना फाग।

होली की ठठोली

जब दिवाकर ने निज कर से
उषा के घूँघट को टाला,

रात परदे में जा बैठी,
भगी छिपकर तारक-माला।
ढाक-कुसुमों का मुँह काला
जिस समय ऋतुपति कर पाए;
खिल उठीं कितनी ही कलियाँ,
कुंद के दाँत निकल आए।
किया चिड़ियों ने कोलाहल,
बेलि भूली अलबेलापन;
जमाने लगी हवा धौलें,
जब गए पौधे नंगे बन।
बहुत मलयानिल ने छेड़ा,
लताओं को छू-छूकर तन;
चिटिक कलिका ने ली चुटकी,
देख उसका मतवालापन।
खोलकर मुँह वह हँसता है,
वे मचल-मचल घूमती हैं;
फूल है उन्हे गोद लेता,
तितलियाँ उसे चूमती है।

मानस-अनुराग

गगन-मंडल में लाया रंग,
हुआ अवनीतल उससे लाल;

विलसता मिला पलास-प्रसून
लोचनो पर जादू - सा डाल।
हुए उससे ललाम तरु-पुंज
ओढ़ किसलय-कुल-कलित दुकूल ;
उसी का बहु अनुरंजन भाव
लाभ कर ललित बने सब फूल।
साड़ियाँ पैन्ह - पैन्ह रंगीन
लाल दलवाली लतिका लोल
उसी के सरसे लालन साथ
दिखाती है करती कल्लोल।
फाग-वैभव को कर रस - लीन
अरुणिमा में लेता है ढाल ;
छबीले तन - मन पर छवि - साथ
वही देता है रंग उछाल।
किसी मूठी का मंजु अबीर
किसी माथे की बिंदी लाल
हमारे मानस का अनुराग
किसी आनन का बना गुलाल।

फाग-अनुराग

रजोगुण ने दिखलाया रूप
लाभ कर काल परम अनुकूल ;

या हुई रंजित होली - हेतु
अवनिमंडल मे उड़ती धूल।
अरुणिमा के विस्तार - निमित्त
अधर मे खुला नवीन विभाग;
या हुआ घनीभूत नभ - मध्य
लाल फूलो का ललित पराग।
ललाई का है हुआ विकास
लालसाओ को कर अभिराम;
या हुई जहाँ - तहाँ समवेत
लोक-लोचन - लालिमा ललाम।
क्या किरण आज रह गई लाल,
हो गई और रंगते दूर;
या प्रकृति है भरती निज माँग
रति-सिँधोरा का ले सिंदूर।
बना करके कमनीय दिगंत
अवनि पर बिखरा ऊषा - राग
उड़ रहा है गुलाल सब ओर,
या हुआ मूर्त फाग - अनुराग।

रंग में भंग

दूर कर सके न मन का मैल,
क्या हुआ तो फिर रंग उँडेल;

चलाते हैं गुलाल की मूठ,
पर कहाँ हो पाता है मेल।
आज भी खुल जाते है कंठ,
होलियो का होता है गान;
तान वह, जो हो भरी उमंग
कहाॅ अब सुन पाते है कान।
कहाॅ है वह आपस का प्यार,
भले ही भंग छान लें संग;
रंग खेले भी रग रहा न,
इस तरह का बिगड़ा है रंग।
नहीं रस से रखते है काम,
बन गए है कुछ ऐसे काठ;
गले अब भी मिलते हैं लोग,
पर नहीं खुलती जी की गाँठ।
मिल गए होली-सा त्यौहार
आज भी मच जाता है फाग;
रागमय जिससे होता लोक,
कहाँ है अब वह जन-अनुराग।

बाल-विलास

विनय

प्रभु! हम सब है बालक तेरे,
गुण गाते है साँझ - सबेरे;
तू दे आँखें खोल हमारी,
जी में जोत जगा दे न्यारी।

फूल झड़े जब, हम मुँह खोले,
सबसे मीठी बोली बोले;
बातें जी की कली खिलावें,
अमृत कानों में बरसावें।

चाल हमारी होवे आला,
करे अँधेरे में उजियाला;
भले काम कर नाम कमावें,
ऊसर में भी कमल खिलावें।

सबके बन जावें हम प्यारे,
कहलावें आँखों के तारे;
किसी का न रोआँ कलपावें,
पर - हित कर फूले न समावें।

रंगत अपनी रखें निराली,
बन जावें फूलों की डाली;
किसी बात में हो न कभी कम,
काँटो में से फूल चुनें हम।

किसी का न जी कभी दुखावे,
मसले फूल के न सुख पावें;
सारी बिगड़ी बात बनावें,
काँटे राहों में न बिछावें।

बीज प्यार का उर में बोवे,
जाति के हितो पर वलि होवें;
फूलें-फलें, सदा सुख पावें,
हम माई के लाल कहावें।

बाल्य-काल

सामने था सुंदर आलोक,
अलौकिकतामय था ससार;
भावनाएँ थी अति रमणीय,
भाव थे परम रम्य सुकुमार।

हृदय में बहता था सुख-स्रोत,
सुधा-सिंचित था मानस-मोद;

कान सुनते थे स्वर स्वर्गीय,
छलकता मिलता चित्त - विनोद।
कुसुम - कोमल - सुतल्प से मञ्जु
गोद माता की थी सुख - मूल;
पिता का लालन - पालन, प्यार
था पुलकमय मानस - अनुकूल।
ललकते जन - लोचन सब काल
वदन मंजुल मेरा अवलोक;
देखकर कलामयी मम केलि
विपुल पुलकित होते सब लोक।
अधूरी मेरी तुतली बात
बजाती हृत्तंत्री के तार;
धूल से भरी धूसरित देह
बहाती नयनों में रस - धार।
ठुमुककर चलना लटपट चाल
बनाता छिति-तल को छवि - धाम;
किलकना कर-कर बाल - कलोल
खिलाता मानस - मुकुल - ललाम।
बाल - रवि - किरणों की कल कांति
लसाती मेरे रुचिर कपोल;
कलानिधि - कोमल-कर के साथ
खेलते थे मेरे दृग लोल।

चमकते नभ के तारक-पुंज
चित्त में भरते अद्भुत भाव;
फबीले तरु के फल, दल, फूल
चौगुना करते थे मम चाव।

दिशा होती दिव-बाला ज्ञात,
प्रकृति पाती थी विपुल विकास;
दिखाते नयनों में कर गेह
ललित लीलाएँ लोक-निवास।

शांतिमय सुखमय सरस महान,
भावमय भवमय अनुभवनीय,
लोक में बाल्य-काल के तुल्य
कौन-सा काल मिला कमनीय।

बाल-भाव

बाल-भाव है अमल-कमल-सम कोमल होते;
उनमे हैं सब काल सुधा के बहते सोते।
वे हैं चंद-समान मनोहरता-मतवाले;
मलयानिल-से सरस छलकते रस के प्याले।
प्रमुदित मत्त मयूर-तुल्य कल नर्तनकारी;
पुलकित-मृदुल-मराल-बाल इव मानसचारी।

तितली

रंग - बिरंगी तितली आई ;
देखो है कैसी छवि पाई।
उसका तन है कितना प्यारा ;
कैसा है वह गया सँवारा।

इधर - उधर फिरती रहती है ;
फूलों पर गिरती रहती है।
फूल उसे हैं बहुत लुभाते ;
अपना रस है उसे पिलाते।

उसको अपनी छवि देते है ;
उसका मन उससे लेते है।
दोनो हँसते है हिल-मिलकर ;
खेल खेलते हैं खिल-खिलकर।

दोनो ही है बड़े रँगीले,
बड़े अनूठे, बड़े फबीले।
दोनो है दोनो के प्यारे ;
दोनो हैं दोनो से न्यारे।

लड़को ! तितली को न सताओ ;
उसका रोआँ मत कलपाओ।
छूते ही मैली होवेगी ;
फूलों - सी रंगत खोवेगी।

उसको देख-देख सुख पाओ;
वैसे ही सुंदर बन जाओ।
मेली बनकर मिले रहो तुम;
फूलों - जैसे खिले रहो तुम।

बालक

फूल हो, फल हो या हो मूल,
या निराले घर के हो माल;
किसी की आँखों की हो जोत,
या किसी गोदी के हो लाल।

किलकिलाते हो बारंबार,
रहे हो कैसी बोली बोल;
याद करते हो भूला पाठ,
या कोई भेद रहे हो खोल।

ललकते हो फूलों को देख,
फलों से दिखलाते हो प्यार;
क्या मिलाते हो जा से जोड़
समय हाथों के तोड़े तार।

हरे पौधे लेते है मोह,
बहुत खिंचते हो उनकी ओर;

कौन - सा बतलाती है भाव
चाह से भरी ऑख की कोर।
उसी में बैठ उसी के साथ
खेलते हो क्यो कितने खेल ;
भूलकर भी क्यों सके न भूल,
धूल से क्यों है इतना मेल।
देख खिलते फूलो का रंग
हुई क्यों खिल जाने की चाह ;
दिया क्या उन परदो को खोल,
खुल गई जिससे दिल की राह।
तुम्हारा बड़ा सुरीला कठ
सुना करके सुंदर झंकार
कौन गाता रहता है राग
छेड़कर किस वीणा का तार।
कभी हँसते हो मुँह को खोल,
होंठ पर मिली कभी मुसकान ;
गुदगुदाती है दिल में पैठ
क्या पुरानी कितनी पहंचान।
हँस रहे हो, या प्यासी आँख
पा रही है प्यारा रस-सोत ;
या किसी अंधकार को चीर
जगमगा गई निराली जोत।

सुखों का देख सलोना रूप
गल रहा है लालच का थाल;
जगत की रंगीनी पर रीझ
या टपकती है मुख से राल।
रेंगकर घुटनों के बल घूम
चारपायों की-सी चल चाल
दी गई गुत्थी कोई खोल,
या बताते हो कोई हाल।

पिता का प्यार

पूछता हूँ यह प्यारी बात,
बता दो मुझको मेरे लाल;
देख तुमको क्यो मेरी आँख
सदा होती है बहुत निहाल।
जब ललक दिखलाते हो प्यार
बहुत ही मीठी बोली बोल;
बढ़ाते हो तब कैसे रीझ,
हमें क्यों ले लेते हो मोल।
दौड़कर जब आते हो पास,
गले लग जब करते हो प्यार;

तब हमें तुम लेते हो मोह
पिन्हाकर किन फूलों का हार।
बड़े ही भोलेपन के साथ
देखते हो जब मेरी ओर,
आँख तब क्यों लेते हो छीन,
चित्त के क्यों बनते हो चोर?
जब कभी हँसते हो दिल खोल,
उमगते हो जब भरे उमंग;
चौगुना होता है तब चाव,
रंग लाती है हृदय - तरंग।
खेलते हो जब कोई खेल,
न-जाने क्या करके उस काल
चढ़ाते हो वह न्यारा रंग,
बने बूढ़ा भी जिससे बाल।
तुम्हारे टूटे - फूटे शब्द
बहुत लड़ियाँ देते है जोड़;
तुम्हारी प्यारी तुतली बात
अमिल कड़ियाँ देती है तोड़।

बाल-कविता

सरस पदो से अधिक सरस है तुतली बोली;
दोनो ही मे यदपि मधुर मिसिरी है घोली।
दोनो ही का कथन हृदयग्राही है होता;
दोनो ही में बहा सुधा-रस का है सोता।
किंतु वचन की परम रुचिर रचना से रूरे
होते है विधु-वदन बाल के बोल अधूरे।
किलक-किलक जो भाव बाल सब हैं बतलाते;
वह व्यजनता नही व्यंजना में है पाते।
कलित कंठ-ध्वनि सकल ललित ध्वनि से है प्यारी;
विविध प्रसादन है प्रसाद गुण से प्रियकारी।
एक उक्ति है मधुर अपर सरसित रस चीठी;
कवि-कविता से कही बाल-कविता है मीठी।

सोना और सुगंध

प्यारे, यह गुलाब है फूला,
जिसे देख तेरा मन भूला;
इसका रूप रंग है न्यारा,
इसीलिये है सबको प्यारा।
देख उसी को तू ललचाया,
रूप-रंग है किसे न भाया;

रूप - रंग दोनों का होना,
क्या है ? है सुगंध औ' सोना।

लाल

लाल लुनाई का है प्यासा ;
पीनेवाला दूध - बतासा।
खोल - खोल मुँह हँसनेवाला ;
प्यार आँख में बसनेवाला।

गात अनूठे गानेवाला ;
मन की ढोल बजानेवाला।
लकड़ी को दौड़ानेवाला ;
घोड़ा उसे बनानेवाला।

धूल - भरा, सोने - सा प्यारा ;
धरती का चमकीला तारा।
हरा - भरा फूलों - सा फूला ;
अपने भोलेपन पर भूला।

बहुत निराला सुथरा, गोरा ;
दूध का भरा हुआ कटोरा।
अँधियाले घर का उजियाला ;
चंदा मामा का मतवाला।

मेरा लाला

टूटी - फूटी बाते जिसकी मुझको लगती प्यारी,
जिसकी आँखों में दिखलाती है फूली फुलवारी।
ठुनुक-ठुनुककर मचल-मचल करके जो है खिल जाता,
झूठे-मूठे गीत सुनाकर जो है मुझे रिझाता।
हँसी - खेल का पुतला बड़ा हठीला, बहुत निराला,
छलका करता है जिसके अलबेलेपन का प्याला।
जिसकी भूल भली लगती है, जो है भोला - भाला,
वह है कौन ? क्या बता दूँ मै, वह है मेरा लाला।

चमकीले तारे

ए चमकीले तारे है ;
बड़े अनूठे, प्यारे हैं।
आँखों में बस जाते है ;
जी को बहुत लुभाते है।
जगमग - जगमग करते हैं ;
हँस - हँस मन को हरते हैं।
खिले हुए फूलों - से हैं ;
जोत के बल्लों - से हैं।
नए जड़ाऊ गहने है,
जिन्हे रात ने पहने है।

कितने रंग बदलते है;
बड़े दिए - से बलते हैं।
घर के किसी उजाले है;
जोत जगानेवाले है।
हीरे बड़े फबीले हैं;
छबि से भरे छबीले है।
कभी टूट ए पड़ते हैं;
फूलों जैसे झड़ते है।
चिनगी - सी छिटकाते हैं;
छोड़ फुलझड़ी जाते हैं।

तारे

बिखरे मोती न्यारे हैं,
या चमकीले तारे है।
सुथरी नीली चादर पर
सुंदर फूल पसारे हैं।
किसी बड़ी अलबेली के
बड़े छबीले प्यारे है।
या अँधियाली रातों की
आँखों के ए तारे हैं।
नीले किसी चँदोवे में
बूटे सजे सँवारे हैं।

या सुरमई बिछौने मे
टॅके अमोल सितारे है।

सरग - बाग के पौधो के
दमक रहे फल सारे है।

या है दहकी आग कहीं,
फैल रहे अगारे हैं।

दिए देवतों के घर के
जगते जोत सहारे है।

या आकाश विमानो पर
बैठे देव - दुलारे है।

चंद

चमक - दमक में सबसे न्यारा
चंद नहीं किसको है प्यारा ?

वह है फूले गेंदे - जैसा,
या है खिले कमलों - ऐसा।

माखन, मेवे मुझे खिलाता;
है वह मिसरी घोल पिलाता।

कभी हँसाता, कभी रिझाता;
कभी अनूठे रस बरसाता।

उसे देख कोई खिलती है;
गले चाँदनी से मिलती है।
रात निखर बनती है आला;
पहन सजी मोती की माला।

धरती जगी जोत है पाती;
दिशा विहँसती है दिखलाती।
पौधे फूले नहीं समाते;
प्यारी फबन फूल है पाते।

मेरे पास चंद, तू आ जा;
आकर अपना खाजा खा जा।
सच्चा प्यार मुझे दिखला जा;
मीठी-मीठी बात सुना जा।

लाड़िले का लाड़

तू है किसका नहीं दुलारा;
है मेरी आँखों का तारा।
तेरा मुखड़ा रंग रँगीला;
है फूलों से कहीं फबीला।

तेरी बोली भोली-भाली;
होंठ की बड़ी सुंदर लाली।

गोरा बदन, दाँत चमकीले ;
छोटे - छोटे हाथ छबीले ।
तेरा हँसना और मचलना ;
तेरा ठुमुक - ठुमुककर चलना ।
कभी खेलना, कभी किलकना ;
कभी ठुनुकना, कभी ललकना ।
किसका जी है नहीं लुभाता ;
घर में है रस - सोत बहाता ।
दिखलाता है रंग निराला ;
भर - भरकर उमंग का प्याला ।
मोती - भरा थाल है मेरा ;
गोदी - भरा लाल है मेरा ।
तेरी आँखों में है टोना ;
तू है मेरा श्याम - सलोना ।

लड़कपन

भोला - भाला बहुत निराला ,
लाखों आँखों का उजियाला ;
खिले फूल - सा खिला फबीला ,
बड़े छबीले मुखड़ेवाला ।

हँसी-खेल का पुतला प्यारा,
बड़ा रँगीला, नोखा, न्यारा;
जगमग-जगमग करनेवाला,
उगा हुआ चमकीला तारा।

अपने राग-रंग में भूला,
चाव के हिंडोलों पर झूला;
चख-चखकर फल बड़े रसील
फिरनेवाला फूला-फूला।

धुन में भरा, न सुननेवाला,
पिए बहँकनेवाला प्याला;
जी मे बसा, आँख में पैठा,
लाड़-प्यार हाथों का पाला।

सरग-लोक में रहनेवाला,
रस-सोतों मे बहनेवाला;
जी को बहुत लुभानेवाली
बात अनूठी कहनेवाला।

रस के किसी पेड से टूटा
फल उमग-हाथो का लूटा;
समय बड़ी सुथरी चादर पर
कढ़ा सुनहला सुदर बूटा।

महँक-भरे फूलों का दोना,
हँसती हुई आँख का कोना;

लेनेवाला मोल मनों का,
खरा चमकनेवाला सोना।
साथ रगरलियो के खेला,
मीठा बजनेवाला बेला;
मनमानापन का मतवाला,
बड़ा लड़कपन है अलबेला।

भोला-भाला लाल

सुनहली किरन रही था फैल,
बड़ा ही था सुहावना काल;
रात थी मोती गई बखेर,
चमकते थे वे हुए निहाल।
खिल रही थी कलियाँ मुँह खोल,
लुभाता था हँस-हँसकर फूल;
महँक भीनी-भीनी सब ओर
फिर रही थी अपने को भूल।
सजा था रहा छरहरे पेड़
जोत औ' हरियाली का मेल;
हवा लहलही बेलियों साथ
खेलती थी कितने ही खेल।

रही थी समा निराला बाँध
पत्तियाँ हरी-भरी हिल-डोल;
देह में लगे सुनहला तार
बढ़ा था फबे फलों का मोल।

खुली धरती-माता की गोद
भरी थी मिले अनूठा लाल;
लाड़ करती थी जिसका दूब
निछावर कर मोती का थाल।

देख वह बहुत रहा था रीझ
फूल-पत्तों की बड़ी बहार;
आँख भोलापन अपना भूल
अनूठी छवि थी रही निहार।

खेलती थी मुखड़े पर मौज,
रंग लाता था उसका प्यार;
गूँधने लग जाता था चाव,
भाव-फूलों का सुंदर हार।

बड़ी लीलाओं का है भेद,
ललकती आँखों का है माल;
उपज के हाथों का है खेल,
यह बड़ा भोला-भाला लाल।

चिड़ियाँ

चिड़ियाँ हैं लुभावनी होती,
बड़ी सजीली, बहुत सँवारी,
उनके पर हैं सुंदर प्यारे,
रखती हैं वे रंगत न्यारी।

बड़े प्यार से उनको देखो,
रीझ-रीझकर उन्हे रिझाओ;
सुनो चहकना उनका चित से,
उनकी चालों पर ललचाओ।

जब वे हों पेड़ो पर गाती,
उनसे गला मिलाकर गाओ;
देख फुदकना उनका फुदको,
उमग पड़ो, फूले न समाओ।

वे हैं बड़ी भली, फुरतीली,
खुली हवा में रहनेवाली;
अपने रंग-ढंग में डूबी,
सुख-लहरों में बहनेवाली।

उन्हे मत सताओ, मत छेड़ो,
वे न जायँ पिंजरों में पाली;
उनकी जाय न डाली छीनी,
हरी-भरी, फल-फूलोंवाली।

जिनसे मसल जाय कोई दिल,
ऐसे कामों से मुँह मोड़ो;
धूल में मिला देने ही को
कोई फूल भी न तुम तोड़ो।

खेल

चित का चाव चौगुना होवे,
लड़कों में उमग भर जावे;
बाप का कलेजा हो दूना,
माता फूली नहीं समावे।
हो पड़ोस में चहल-पहल नित,
बड़ा सुरीला होवे गाना;
घर में बजें अनूठे बाजे,
खुल जावे आनंद - खजाना।
हरे - भरे पत्ते छवि पावें,
रस से सिंचे सजीली क्यारी;
नए - नए फूलों के फूले,
और फबीली हो फुलवारी।
बागों में बसंत आ जावे,
धान लहलहाए खेतों मे;

रवे किसी चाही चीनी के
बिखर फैल जावें रेतों मे।
वारा जाय थाल मोती का
खेल - कूदवाला थलियो मे ;
करे चाँदनी घर कोनों में,
चाँद उतर आए गलियों में।
जिन न्यारी लीलाओं के बल
उनकी लाल बलाएँ ले लो,
जो दिखलाएँ कला निराली,
ऐसे ही खेलों को खेलो।

कोई लाल

कलियाँ है खिल रही, बेलियाँ हँस रही,
धरा हरी चादर फूलों से है भरी ;
फूट रही है जोत, निराला है समा,
अँधियाले में छूट रही है फुलझड़ी।
बड़ी-बड़ी आँखों में जादू है भरा,
चित्त देख भोलापन जाता भूल है ;
हरी-भरी दूबों की प्यारी गोद में
है यह कोई लाल या खिला फूल है।

काम की बातें

आँखें बदल - बदलकर अपनी
बहँक - बहँक जो बहुत बकोगे;
खुले हुए दिल से तो कैसे
साथ - साथ हँस - खेल सकोगे।

मुँह में बुरी बात जो आए,
तो न भूलकर भी मुँह खोले;
प्यार - भरा जी बिगड़ जायगा,
बान बढेगी बोली बोले।

खींच बढ़ेगी खींच - तान से,
डूब जायगी हित की डोंगी;
छीना - झपटी कभी करो मत,
इससे छीछालेदर होगी।

अपने मतलब की बातो से
तुम्हे नहीं जो मिलती छुट्टी,
तो जिसको हो बहुत चाहते,
उससे करनी होगी कुट्टी।

बात - बात में छेड़ - छाड़कर
जी मे किसी कुभाव भरो मत;
हँसी खड़ा करती है झगड़े,
हँसो - हँसाओ, हँसी करो मत।

सबसे मीठी बोली बोलो,
मैली रखो न अपनी आँतें;
जी में कड़वापन भर देंगी
कड़वे मुख की कड़वी बातें।
जो निबाहना साथ तुम्हें है,
तो पत साथी की न उतारो;
भौहें तान-तान मत बहको,
मत तानो, मत ताना मारो।
कभी चलो मत ऐसी चालें,
जिससे संगी-साथी छूटे;
आँखों मे आँसू भर आए,
मोती की मालाएँ टूटें।

चंद-खिलौना

चंदा मामा दौड़े आओ,
दूध कटोरा भरकर लाओ;
उसे प्यार से मुझे पिलाओ,
मुझ पर छिड़क चाँदनी जाओ।
मै तेरा मृग-छौना लूँगा,
उसके साथ हँसू-खेलूँगा;

उसकी उछल - कूद देखूँगा,
उसको चाटूँगा, चूमूँगा।

तू है अगर चाँदनीवाला,
तो मै भी हूँ लाल निराला;
जो तू अमृत है बरसाता,
तो मै हूँ रस - सोत बहाता।

जो तेरी किरनें है न्यारी,
तो मेरी बातें है प्यारी;
तू है मेरा चद - खिलौना,
मै हूँ तेरा छुन्ना - मुन्ना।

चंद

रूप रंग दोनो में न्यारा,
तेरे मुखड़े जैसा प्यारा;
है यह चंद या कि रस-प्याला,
या चाँदी का थाल निराला।

कोई बड़ा फूल है फूला,
या है यह आईना भूला;
जोति-बेलियो का है बीया,
या है यह अकास का दीया।

किसी सुंदरी ने मुँह खोला,
या है यह माखन का गोला;
है यह गेंद किसी की खोई,
या सुंदर पतंग है कोई।
किसी देवता का है छाता,
कलस रुपहला है दिखलाता;
या है यह चमकीला बूटा,
या बैलून सरग से छूटा।
क्या मैं बतला दूँ, यह क्या है,
एक कटोरा दूध भरा है;
तेरा है अनमोल खिलौना,
जिसमें बैठा है मृग-छौना।

चंदा मामा

मेरे प्यारे बड़े दुलारे;
ऐ मेरी आँखों के तारे।
आ, मैं तेरा जी बहलाऊँ;
तुझे अनूठी बात बताऊँ।
जो है दूध-समुद्र कहाता;
कढ़ीं उसी से लछिमी माता।

प्यारा चंद चाँदनीवाला;
उसमें से ही गया निकाला।
इसीलिये दोनो मन भाए;
जग में भाई-बहन कहाए।
जगत-पिता जो माना जाता;
वह लछिमी-पति है कहलाता।
इस नाते हैं सभी उमगते;
चंदा को मामा है कहते।
है वह जगमग-जगमग करता,
उससे है झर-झर रस झरता।
जो है उससे ज्योति निकलती;
दिए की तरह वह है बलती।
तेरी आँखो पर है खिलती;
तेरे मुखड़े से है मिलती।
तुझे चूमती ही रहती है;
दूध-धार-जैसी बहती है।
रंग निराले दिखलाती है;
छिटिक धरा पर छवि पाती है।
क्या तू इसे हाथ में लेगा?
क्या इससे मिलकर खेलेगा?
आ रे चंदा मामा, आ जा;
लाल को खिला फूल बना जा।

फूल और तारे

दोनो ही हैं रंग-बिरंग, दोनो हैं छविवाले;
दोनो ही हैं बड़े फबीले, दोनो बड़े निराले।
खिले हुए रहते है दोनो, दोनो हैं अलबेले;
किसी बड़े बाजीगर के हैं दोनो सुंदर चेले।
आँखों की चोरी करते है, दिल है छीने लेते;
दोनो हैं अपनाते रहते, दोनो हैं सुख देते।
ए धरती के बड़े लाड़िले, वे आकाश-दुलारे;
दोनो ही है हँसते रहते, दोनो ही है प्यारे।

माता

किसने तुमको पोसा-पाला, किसने तुम्हे जिलाया;
बड़े प्यार से किसने तुमको अपना दूध पिलाया।
गिना तुम्हारे दुख को किसने अपने दुख से बढ़कर;
उमग-उमग पड़ते थे तुम किसके कंधों पर चढ़कर।
किसकी मीठी बातें सुन तुम फूले नही समाते;
उँगली पकड़-पकड़ चल किसकी तुम हँसते-मुसकाते।
जिसका मुखड़ा देख तुम्हें है सारा सुख मिल जाता;
वह माता है, स्वर्ग नही जिसके पद-रज को पाता।

चाह

बना रहे पानी मोती-सा,
चमक-दमक प्यारी दिखलाओ;
अपने मुँह की लाली रखकर
लाल ! लाल-जैसे बन जाओ।

तितली - जैसी रखो रंगतें,
बड़ी निराली ललकें पाओ;
भौंरो - सा रँग श्याम रंग में
गूँज-गूँज न्यारे गुण गाओ।

हरा - भरा रह पेड़ों - जेसा
सदा बड़े सुंदर फल लाओ,
रहो चहकते चिड़ियों - जैसा,
कोयल की - सी कूक सुनाओ।

प्यार - छाँह में पल - पल करके
कभी किसी का दिल मत छीलो;
रहे चाँद - सा मुखड़ा हँसता,
प्यार - छलकता प्याला पी लो।

बालक

खिला रहे फूले फूलों - सा,
बने आँख का तारा;

जगमग करता रहे चाँद - सा
बहा - बहा रस - धारा ।
उजियाला फैला - फैलाकर
दूर करे तम सारा ;
दीपक बने अँधेरे घर का
बालक - मुखड़ा प्यारा ।

कामद कवित्त

(१)

भाव-भक्ति

पादप के पत्ते है प्रताप के पताके हरे,
क्यारियाँ सुमन की सुमनता सँवारी हैं;
तेरे अनुराग - राग ही से रंजिता है उषा,
नाना रवि तेरे तेज ही से तेजधारी हैं।
'हरिऔध' तेरे रंग ही में रजनी है रँगी,
विधु की कलाएँ कर-कंज की सुधारी है;
महा प्रभावान पूत नख की प्रभा से लसे
सारे नभ-तारे तेरे पग के पुजारी हैं।
सेमल को लाल-लाल सुमन मिले है कहाँ,
पीले-पीले पुष्प दिए किसने बबूलों को;
तुली तूलिकाएँ ले-ले कैसे साजता है कौन
सुललित लतिका के कलित दुकूलों को।
'हरिऔध' किसके खिलाए कलिकाएँ खिली
दे-दे दान मंजुल मरंद अनुकूलों को;

किससे रँगीली साड़ियाँ हैं तितली को मिली,
कौन रँगरेज रँगता है इन फूलों को ?
किसके करों से है धवलिमा निराली मिली,
किसके धुलाए है धवल फूल धुलते ;
किसके कहे से ओस-बिंदु सुमनावली के
मोहकर मानस है मोतियों से तुलते।
'हरिऔध' किसके सहारे से समीर द्वारा
मंजुल मही में हैं मरंद - भार ढुलते ;
किसके लुभाने के बहाने मनमाने कर
रात में खजाने रत्न-राजि के हैं खुलते।
झर-झर झरने उछाल वारि - बिंदुओं को
अंक किसका हैं मंजु मोतियों से भरते ;
पादप के पत्ते हिल-हिल है रिझाते किसे,
खिल खिल फूल क्यों सुगंध है वितरते।
'हरिऔध' किसी ने न इसका बताया भेद,
सकल फबीले फल क्यों है मन हरते ;
बजते बधावे क्यों उमंग-भरे भृंग के हैं,
क्यों हैं रंग-रंग के विहंग गान करते ?
कामना-कलित-कलिका को है खिलाता कौन,
मधु है मिलाता कौन मानस-हिलोरे में;
कौन है विलसता सरस वासना के मध्य,
रस भरता है कौन प्रमद कमोरे में।

'हरिऔध' लालायित होती है ललक काहें,
कौन लसता है लोक-लालसा के कोरे में;
कौन लाभ हुआ लोने-लोने लोचनो के मिले,
जो न लाली लाल की दिखाई लाल डोरे में।
लगन लगे भी लालसाएँ जो ललाती रही,
कैसे तो न लोक-जाल लोलुपों को टोकेंगे;
वसुधा विकासिनी विभूति - विरहित जन
सुधा को प्रवाह कैसे मानस में रोकेंगे।
'हरिऔध' कैसे कांत - कामना - विहीन कर
मनुजात जीवन - महान - फल लोकेंगे;
जो न बने मानस-मुकुर मल - मोचन, तो
कैसे लोक - लोचन को लोचन विलोकेंगे।
किस लोक मजु की महान मंजुता से रीझ
महँक रही है वायु महँक अधिक ले;
किस मधु-सिंधु को सुनाता है मधुर गान
अति कमनीय तान मधुप रसिक ले।
'हरिऔध' कूक-कूक किसे है बनाता मुग्ध
रुचिर रसाल - मंजरी का रस पिक ले;
किसे अवलोके फूल खिलते अघाते नही,
किसके विलोके कुद के है दाँत निकले।
जिसकी पुनीत भावना में उर लीन रहे,
क्या न वह भाव-भरी मुरली बजाएँगे;

क्या न रोम-रोम में भरेंगे तमहारी तेज,
क्या न भीत जन को अभीत कर पाएँगे।
'हरिऔध' जिसकी सजीवता सजीवन है,
लोग जाग जिससे जगत को जगाएँगे;
क्या न वह गान फिर गाएँगे कृपानिधान,
क्या न वह मंजु तान कान को सुनाएँगे।
किसे लाभ कर महि महिमामयी है हुई,
किसकी पुनीत केलि कीर्ति-कलसी-सी है;
मानवता किसकी महान मति से है लसी,
दानवता किसके पदों से गई पीसी है।
'हरिऔध' ऐसी पति-देवता कहाँ है मिली,
किसकी प्रतीति प्रीति प्रगति सती-सी है;
कौन पाप-पीन-जन पातक-निकंदिनी हैं,
कौन जग-वंदिनी जनक-नंदिनी-सी है।

(२)

गंगा-गौरव

अंग-अंग में है लोक-पावन प्रसंग भरा,
रूप अवलोकनीय रंग बहु न्यारा है;
तरल तरंग में हैं मंजु भावनाएँ बसी,
संचित विभूति में लसित भाव प्यारा है।

'हरिऔध' अंक अलौकिकता निकेतन है,
कमनीय कला कांत कलित किनारा है;
सारा मलहारी सतोगुण का सहारा महा,
सुधा-से सरस गंगा तेरी रस-धारा है।
भारत-धरा में भरी ऐसी भव-भावनाएँ,
जिससे विभूतिमान बना भिखमंगा है;
काल-अनुकूल लगे कूल की कलित वायु
ललित विचारवाला बनता लफंगा है।
'हरिऔध' देखे देव-दारिका-सी दिव्य भूति
दबता दुरंत यमदूत-दल-दंगा है;
भूतल की रंगा रंग रंजनाओं-से है लसी,
पावन-प्रसंगा गंगा तरल-तरंगा है।
पूजन-भजन कर कुजन सुजन बने,
भारत का जन-जन जानता है इसको;
भव में भवानी-पति-सा ही भूतिमान किया,
भाव से भरित भावना दे जिस-तिसको।
'हरिऔध' सगर-सुअन का सँवारा जन्म,
तारा उसे, कोई तार पाता नहीं जिसको;
सुधा को उधार वसुधातल-सहारा बनी,
सुरसरि-धारा ने सुधारा नहीं किसको?
शंभु के गरल की गरलता न दूर होती,
सहज तरलता न सिंधु की निबहती;

हिमवान महिमा-निधान बन पाता नहीं,
शुचिता न लोक में महत्ता पाती महती।
'हरिऔध' पावनता मिलती पाताल को न,
भूतल में भरित अपावनता रहती;
करते असुरता असुर के समान सुर,
सुरसरि-धारा जो सहारा दे न बहती।
पूत सरि-धारा की सफल भूत साधना है,
सुर - पुर - धाम की मनोरम निसेनी है;
पावन है परम अपावन मनुज - मन,
सरस, सुहावन, सकल सुख - देनी है।
'हरिऔध' लाल, सित, असित विकासमयी
भारत - वसुंधरा की विलसित बेनी है;
त्रिदिव त्रिदेव-सी पवित्रता - निकेतन है,
त्रासिनी त्रिताप की त्रिलोक में त्रिबेनी है।
सुरसरि-धारा है उपासना सतोगुण की,
सब सुख-सौध की अलौकिक निसेनी है;
कलित कलिंद - नंदिनी - सम सुकेलिमयी
घन रुचि तन की समाधि सुख-देनी है।
'हरिऔध' लोक-अनुरंजिनी सु अनुरक्ति,
शारदा-सी पाहन कुठावन की छेनी है;
सिकता-विधायिनी है तामस रसिकता की,
मानव की पूत मानसिकता त्रिबेनी है।

भारत-विभूति

सब-भूत-हित की विभूति विलसी है कहाँ,
विश्व-बंधुता की निधि किसकी बही में है;
मानवता कहाँ है कुसुम-कलिका-सी खिली;
दिव्यता कहाँ के कवि-कुल की कही में है।
'हरिऔध' आलोकित लोक किससे है हुआ,
सुरपुर - सत्ता बसी किसकी सही में है;
भुवन - विमोहिनी महान मंजुता है कहाँ,
भारत ही मंजुतम मंजुल मही में है।
सारी वसुधा में है बगारती विमल मति,
पाहन - समूह में है प्रतिभा पसारती;
वारिधर - सदृश विवेक - वारि बरसा के
भूतल में स्वर्गिक विभूति है उतारती।
'हरिऔध' भावना सुधारती है भावुक की,
मानस में पूत भूत भाव है उभारती;
भरत कुमार भूति भारती की मूल भूत
भारतीयता से भरी भारत की भारती।
आया क्यों धरा में, क्यों कहाया भारतीय जन,
भूत जो भगाया नहीं भारभूत पापी का;
पूज-पूज सुर-वृंद कौन-सी विभूति पाई,
बल जो बिलाया नहीं प्रबल प्रलापी का।

'हरिऔध' कैसे तो सपूती न कपूती होती,
न गया मिटाया जो प्रमाद आपाधापी का;
देश परितापी को तपाया जो न दे-दे ताप,
पाया जो न पौरुष प्रताप से प्रतापी का।
भारतीय भारती तो आरती उतारती क्यों,
भारत-धरा की धीरता में जो न सनते;
कैसे जन करता यजन कर गुण-गान,
जन्मभूमि वैरियों की जड़ जो न खनते।
'हरिऔध' कैसे देवी-देवता तो देते मान,
तन वारि सुयश-वितान जो न तनते;
जय बोल-बोल जाति बलि-बलि जाती कैसे,
जो न बलि-वेदी के प्रताप बलि बनते।

विधि-विधान

अकलित कुसुम ललित पल्लवों में मिले,
भावुकता भूल-सी विलोके भाल-अंक में;
समझे तिमिर मे अलोचनता लोचन की,
निवसे अकिंचनता कंचन की लंक में।
'हरिऔध' विधि की है वंकता विदित होती,
पाए गए रंकता करंकी भूत रंक में;

अवलोके सुरसरि मंजु अंक को सपंक,
कलुष कलंक देखे मानस-मयंक में।
कुल-लाल होते हैं अकाल काल-कवलित,
सेंदुर विपुल बालिका का धुल जाता है;
लाखों मालामाल, लाखों पेट हैं न पाल पाते,
लाखों सुखी, लाखों का कपाल कलपाता है।
'हरिऔध' देव-कुल होता है दलित नित,
फूला-फला दानव का दल दिखलाता है;
अबुध-अबुधता विधान है बताता यह,
विबुध भले ही बने बुध न विधाता है।

मोह-महत्ता

सुख को असुख, महा नीरस रसों को कर
कलित कुसुम को कुलिश कर पाता है;
देता है मलिन बक-माला को मराल-पद,
ललित रसाल को बबूल बतलाता है।
'हरिऔध' विधना-विधान है विबोध जन,
सुधा-सम वसुधा का जीवन-विधाता है;
आप ही मनुज-कुल लाल को कराल काल
काला नाग मंजु मणि-माल को बनाता है।

बहु सुख-लालसा दिखाती है लहू से भरी,
लोभ लाखों लोगों का रुधिर पी ललाता है;
धूल में मिलाता है सुमेरु-सेसदन मद,
कोप-दव दिवि को दहन कर पाता है।
'हरिऔध' पामरता - पूरित कलंक अंक
कामना - कसाइनी ललाट पै दिखाता है;
करके अमानवता फूला है समाता नहीं,
महि में न कौन पाप मानव कमाता है।

भव को प्रपञ्च मान भोग के न भोगी रहे,
श्रम बहु भाया भगवान के भजन का;
उचित विराग राग के न अनुरागी रहे,
झूठा ज्ञान रहा यजनीय के यजन का।
'हरिऔध' अयथा विवेक के विवेकी रहे,
बोध हो न पाया बुध बोधक वचन का;
गगन - सुमन - अनुमोदक सदैव रहे,
खाते रहे मोदक समोद हम मन का।

बड़े-बड़े लोचन के लालची बने ही रहे,
बिसर न पाई बात बेंदी बिकसी की है;
छीछी-छीछी कहैं लोग, छीछी को किसे है सुध,
सुछवि न भूल पाई छाती उकसी की है।
'हरिऔध' चूक-चूककर भी न चूक चुकी,
कसक सकी न कढ़ कंचुकी कसी की है;

उकस-उकस आज भी न कस में है मन,
अकस न छूट पाई काम अकसी की है।

प्राकृतिक दृश्य

रजत विराजित विलोक तरु-राजि-दल,
मोहकता अवलोक अवनी अपंक की ;
भाए विभा - वलित दिगंगना विशद भाल,
छाए छवि-पुंजता रुचिर छवि रंक की।
'हरिऔध' राका-रजनी-सी रंगिणी के मिले,
छीर-निधि की-सी छटा देखे सरि अंक की ;
चाँदनी-समान चारु हासिनी विकास व्याज
बिहँस रही है आज मंजुता मयंक की।
नाना स्वाद-सदन मनोहर सिता-समान
वसुधा विनोदन सुधा-निधि मे धँसे हैं ;
दाख-से सरस मधु - मंजु कंज - कमनीय,
माधुरी की मधुर कसौटी पर कसे हैं।
'हरिऔध' लालायित होता है विलोक लोक,
लोच भरे लालची विलोचन में बसे हैं ;
आहा ! कैसे तरु में फबीले सौरभीले भले
पीले-पीले परम रसीले आम लसे हैं।

किसके अबीर फेंके महुए हुए है लाल,
किसने गुलाल डाला सेमल के फूलों पर?
मुँह खोल-खोल जब बान हँसने की पड़ी,
तब हँस-हँस क्यों न सबको हँसाएँगे?
महँ-महँ महँक रहे है जो महँक भरे,
कैसे तो न महती मही को मँहकाएँगे।
'हरिऔध' पाई है बहार तब कैसे नहीं,
हार किसी महिमामयी को पहिनाएँगे;
रंगवाले मिले आज दुगुने रँगीले बने,
कैसे फूल रंग ला न रंग दिखलाएँगे।
लाली मिले किसकी कलित किसलय हुए,
पत्ते महुए के हो गए है क्यों ललिततर;
रँग गया रोचन से रुचिर फलों के साथ
वट के नवलदल कौन कमनीय कर।
'हरिऔध' कोई क्यो नही है बतलाता हमें,
सारे कचनार क्यो अबीर से गए है भर;
रंग खेल किससे पलास हो गए है लाल,
किसने गुलाल फेंका ऊपा के कपोल पर।

विविध विषय

लोग बोली बोलेंगे, करेंगे बोलती तो बंद,
बाल-बाल बीनेंगे बला जो बन जाएँगे;

चाल जो चलेंगे, तो चलेंगे हम लाखों चाल,
मुँह नोच लेंगे, कभी मुँह जो बनाएँगे।
'हरिऔध' वैरियों को दम लेने देंगे नहीं,
आँख तो निकाल लेंगे, आँख जो दिखाएँगे;
बात-बात ही मे बात उनकी बिगाड़ देंगे,
सौ-सौ बात एक बात के कहे सुनाएँगे।
कामद कला से कांत कलित कलेवर है,
कमनीय कांत कौमुदी है रमी अंक में;
भावमयी मत्तता मधुर भूत माधुरी है,
लोक लोभनीयता है कल्पना कलङ्क मे।
'हरिऔध' सरसे बरसता सरस रस,
विकच सरोज-सा लसा है भाव अंक में;
त्रिबुध-विमोहिनी विभूति बहुधा है बनी,
वसुधा सुधा है मंजु मानस मयंक में।
बहु वंदनीय जन द्वारा वदनीय बने,
वक्रता अवंकता हुई है बाल-वंक की;
लोकपति लोचन कहाए मुख लाली बची,
कलित कला में डूबो कालिमा कलंक की।
'हरिऔध' पाए द्विजराज-सा पवित्र पद,
वचना पुनीत बनी पूत रुचि रंक की;
पाप-पक-मज्जित हुए भी न हुई मलीन,
भव-भाल-अंक बनी महिमा मयंक की।

आलस-तिमिर-तोम मिहिर मरीचियाँ हैं,
बहु विध बाधा विहगावलि तुफंगें है;
उर-सर-विलसित विलुलित वीचियाँ हैं,
मानस-गगन में विराजित पतंगें है।
'हरिऔध' सुरभि सुरुचि सुमनालि की हैं,
प्रचुर प्रयास-पयोनिधि की तरंगें हैं;
हास-भरी विविध विलास-भरी आस-भरी,
यौवन - विकास - भरी युवक - उमंगें हैं।
ज्वालामुखी-ज्वाल-माल-सी है बड़ी विकराल,
महा काल-क्रूर की अकुंठित तुफंगें है;
फुँकरत शेष के सहस्र फन की है फूँक,
अग्निमयी प्रलय प्रभंजन-तरंगें हैं।
'हरिऔध' विदित कराल कालव्यालिनी है,
पातकी प्रकांड गिरिध्वंसिनी सुरंगें हैं;
भैरव भयंकरी अशंकरी कपालिका-सी,
लोक - प्रलयकरी युवक की उमगें है।
तम-तोम काँप उठा, महि मुसुकाने लगी,
उर में समीर के निवास किया रस ने;
विकसे प्रसून, विटपावलि विकच बनी,
लता-बेलि-तन मे वि॰ ास लगा बसने।
'हरिऔध' उमगी दिगंगना विहँस उठी,
गगन में विपुल विनोद लगा लसने;

भागी जाती यामिनी के पीछे पड़े तारे देख,
खिल गई चाँदनी मयंक लगा हँसने।
विबुध-समूह हो विवेकी लोक वंदनीय,
नेता मतिमान नीति-नियम-निरत हो;
जन-जन में हो नवजीवन विराजमान,
समय-प्रवाह जनता को अवगत हो।
'हरिऔध' लोक कमनीय कामना है यही,
युवक-समाज धीर, वीर, धर्म-रत हो;
देश औ' विदेश की विलोके वर्तमान दशा,
सच्ची देश-सेवा देश - सेवक का व्रत हो।
जो न सँभलेंगे, मुँह के बल गिरेंगे क्यों न,
ठीक न चलेंगे, ठोकरें तो क्यों न खाएँगे;
बात-बात में जो बहँके, तो क्यों रहेगी बात,
बात बिगड़ेगी क्यों न, बात जो बनाएँगे।
'हरिऔध' बिना मुँह खोले क्यों खुलेंगे भेद,
आँख न खुली, तो कैसे खुल खेल पाएँगे;
रंग उतरा, तो कैसे फिर से चढ़ेगा रंग,
रंग बिगड़ा, तो कैसे रंग दिखलाएँगे।
खाइए न मुँह की, बखेरिए न बैर-काँटे,
कर लाल आँख लहू सगों का न गारिए;
लाग से लगाइए न आप घर ही में आग,
ऊब आप ही न पत अपनी उतारिए।

'हरिऔध' सोचिए, बिगाड़िए न बातें बनी,
जोम से न हित की जमी जर उखारिए ;
आँख होते करिए न छाती के छतों में छेद,
छूतछात से बच अछूत को उबारिए।

दो सवैए

थी तितली जिनका मुख चूमती,
भौर विलोक जिन्हे ललचाते ;
जो हँस के हरते जन-मानस,
मंजुल वायु को जो महँकाते।
ए 'हरिऔध' हरे दल मे
खिल जो लतिका में बड़ी छवि पाते ;
सूख गए, बिखरे, मिले धूल में,
आज वे फूल नही दिखलाते।
स्वर्ग गया अथवा शिव - लोक में,
या कमलापति - धाम सिधारा ;
सोम बना या बना दिननायक,
या बना व्योम का कोई सितारा।
सूखती है क्यों नही 'हरिऔध'
विलोचन से बहती जल - धारा ;
क्या हुआ, कैसे कहाँ क्यो गया
वह रामजीलाल - सा बंधु हमारा।

ब्रज-भाषा के पद्य

कांत कवित्त

काके लोक लालन की लालसा लखावै खरो,
मजु मीठे फल सों विटप-पुंज लदरा;
गान है करत गीत काके गुन-गौरव को,
गौरवित खेतन मै नाना अन्न गदरा।
'हरिऔध' चेत काकी चारुता को चेरो होत,
भू पै चाहि चाँदनी को फैलो चारु चदरा;
कहे देत वारिधिता कौने कृपा - वारिधि की
बरसि - बरसि वारि बार - बार बदरा ।
कंटक - समूह भयो कलित - कुसुम - दल,
असरस सकल भयो है मंजु रस - ऐन;
कल्पलता कमनीय अकलित बेलि भई,
बरसन लाग्यो सुधा धूरि - धूसरित गैन।
'हरिऔध' कामधेनु कामद कलुख भयो,
चारुता निकेतन अवनि सिगरो अचैन;

चोखे भए चाव, रस-पोखे सब ओखे भए,
बसे मेरे नैनन में काहू के अनोखे नैन।
कोकिल की काकली सुनाति, अलि गुंजरत,
चारो ओर मंजु कुसुमावलि खिलति है;
लसत वसंत, कुसुमायुध करत केलि,
मलय-समीर लगे लतिका हिलति है।
'हरिऔध' चद कांत कर ते धरा के काज
चाँदनी की अति चारु चादर सिलति है;
चाहि-चाहि कौन चेनवारो ना चकित होत,
चैत ही मै चैत की-सी चारुता मिलति है।
मदिर रसाल-मजरी ते मेदिनी है होति,
मत्तता मिलिद - अवलीन मै बसति है;
सुरभि लै मंद - मंद बहत समीर मजु,
लहि कै विकास लता-बेलि विकसति है।
'हरिऔध' चारो ओर चौगुनी विभा पसारि,
चारुता-उपेत चैत - राति बिलसति है;
नवदल चाहि - चाहि चद सुधा बरसत,
तरु - चय चूमि-चूमि चाँदनी हँसति है।
सरग से आई कैसे उतर धरातल पै,
कैसे मनभाई सिधि पाई सधे नर सों;
हरे-हरे बसन कहाँ पै कब कैसे मिले,
पीरे-पीरे सुमन लहे हैं काके कर सों।

'हरिऔध' लोक नेह नहे नेहवारी भई,
किधौ जोति जननी बनी है काहू बर सों ;
कहा पाए लोचन मै रस बरसाए देति,
काके सरसाए है सरस भई सरसों।
पी-पी की पुकार सुने निज काकली को भूलि
कोकिल पपीहरा को मंजु मुख जोवै है ;
सरस बयार बार - बार मद - मद बहि,
बैहर की बिदित बिभूति को बिगोवै है।
'हरिऔध' बारि-बूँद भरो द्रुम - पुंज-दल
किसलय कमनीयता को मद खोवै है ;
बोवै है पयोद रस - रसन बिनोद - बीज,
पावस प्रमोद ऋतुराज रग धोवै है।
हरे द्रुम - दलन हरीतिमा को दूनी करि
बूँद मिस मजु मुकुताहल पिरोवै है ;
दै-दै कै रसालता अलौकिक रसालन को
जोति-बीज जुगनू - जमात मिस बोवै है।
'हरिऔध' बरसि-बरसि रस सरसत,
जीवन भरो है जग जीवन सँजोवै है ;
लै-लै मेघराज ते बिनोद बिलसित बारि
पावस प्रमोद ऋतुराज रग धोवै है।
ऊषा अहै, किधौ रंग-भरी ललना है लसी,
ललक बिलोचन बिलोकि जाको तरसत ;

बाल रबि है, कै है अबीर भरो कोऊ तन,
जो कर पसारि कै दिगंगना को परसत।
'हरिऔध' अरुनारे दल से लसे है तरु,
कैधों रंगवारे रंग खेलि-खेलि सरसत;
उड़त गुलाल कै पराग नभ-मंडल मैं,
लोक-अनुराग कै बसुंधरा पै बरसत।

ह्वै गई है लालिमा लुभावनी दिगंगना की,
लसी कुसुमावलि से छिति गई छिक-सी;
लोने-लोने तरुन ललित लतिका तन मै
कानन में दिवि की ललामता है बिकसी।
'हरिऔध' फाग राग ही के अनुरागी बने,
लोक-लालसाएँ गई लाली हाथ बिक-सी;
ललना ललाम ऊषा पहिरि बसन लाल
बाल-रबि-थाल मैं गुलाल लै कै निकसी।

हरे-हरे द्रुम-दल हीतल हरन लागे,
सीतल समीर तन परसन लाग्यो री;
चारो ओर पी-पी की पुकार पसरन लागी,
मोर-सोर सुने मन तरसन लाग्यो री।
'हरिऔध' अवधि को अंत न मिलत आली,
धुरवा दिगंतन मैं दरसन लाग्यो री;
बरसन लाग्यो बारि बिलसित बूँदन सों,
ब्योम में सरस घन सरसन लाग्यो री।

मरैगो, बचैगो नाहि, मर है तिहारो लोक,
मानव की गणना भई है ना अमर मै;
तब काहे जाति-हित साधना न साधे सधी,
जब उठ्यो बाँधि कै पटूको तू कमर मैं।
'हरिऔध' सुख चारि दिन को तमासो अहै,
मधु-लोभ भलो होत भूले ही भ्रमर मैं;
जड़ तो न काहे तेरो हियरो छटूक भयो,
तू भो जो न टूक-टूक जीवन-समर मै।
तऊ पात-पात अहै मन ना हमारो जात,
जाति है हमारी बनी दूध में की मखिया;
अवलोकि सौतुख ही साँसत बिपुल होत,
सौगुनो लहत सुख साथवारी सखिया।
'हरिऔध' पढ़िकै कुपाठ क्यों भए है काठ,
जी की गाँठ काहें है बिकारन की बखिया;
दुख माँहि काहें भूरि आहें डालती है नाहि,
काहे नाहि सालती है आँसू-भरी अँखिया।
परम दुखित अवलोक भारतीयन को
जो न तू बनत बिचलित बहुतेरो है;
जो न रोम-रोम खरो होत देस-दुख देखे,
जो न जाति-हित को रहत चित चेरो है।
'हरिऔध' तो तू महा-पामरता-पूतरो है,
खलता-निकेतन अधमता-बसेरो है;

काठ ते, कमठ-पीठ हूँ ते है कठिन मन,
पाहन ते, पवि ते कठोर उर तेरो है।
काहू की ठगौरी परे ठग ह्वै गए हैं सग,
बन गयो परम बिमुख मुख कौर-कौर;
जाति को है ठोकर पै ठोकर लगति जाति,
काठ-सी कठोरता पुकारति है और-और।
'हरिऔध' करत कठिन ठकठेनो काल,
ठुकराई ठकुराइनें है ठाढ़ी पौर-पौर;
है न वह ठाट, वह ठसक, न वह टेक,
ठिठके दिखात ठूँठे ठाकुर है ठौर-ठौर।
काहे काठ मारि गयो, ठग क्यों भयो है सग,
काहे बहु बिमुख बन्यो है मुख कौर-कौर;
जाति को है ठोकर पै ठोकर लगति काहे,
काठ-सी कठोरता पुकारति क्यों और-और।
'हरिऔध' काहे ठकठेनो है करत काल,
काहे ठान ठानि है ठगौरी खड़ी पौर-पौर;
काहे झूठे ठाट औ' ठसक से ठगे हैं जात,
ठकुरसुहाती क्यो ठठाति ठाढ़ी ठौर-ठौर।
बन - बन माँहि दरसत सुर - तरु नाहिं,
सरस रसाल को सदन है न बौर-बौर;
नर-नर माँहि नाँहिं नरता निहारी जात,
प्रभुता - प्रभाव पूत होत नाँहिं पौर - पौर।

'हरिऔध' सबमें न गुण-गरिमा है सम,
बहु रस बलित बनत नाँहि कौर-कौर;
घर-घर माँहि रमनीय रमनी है कहाँ,
कमनीय खनि अवनी मे है न ठौर-ठौर।

प्रानन को लाला बैरि-बृंद को है परि जात,
बड़ो-बड़ो पाला मारि लेत पल-भर मै;
बान मारि-मारि मान हरि लेत मानिन कौ,
भर देत नर-मुंड मेदिनी अधर मै।
'हरिऔध' कहै काको काल लौ दिखात नाँहि
काली-सी कराल करवाल लेइ कर मै;
मर ह्वै बरन कै अमरता अमर सम,
सूरमा करत सूरमापन समर मैं।

काल-केतु ताको होत मंजुल मयक-सम,
सुधा-सोत ताको होति निपतित दामिनी;
सुरसरि-धारा ताको सारी सरि-धारा होति,
सुरा होति ताकी सिद्धि सम अनुगामिनी।
'हरिऔध' जाकी भावना है मंजु भाव भूति,
कोल-बाला ताको होति वृंदावन-स्वामिनी;
ताको सुर-कामिनी असुर-भामिनी है होति,
राका-निशि ताको होति पावस की यामिनी।

लहू है करति, पै भरति है लहू ते नाँहि,
वाकी ललकार काल-कोप-किलकार है;

तजति न मुख म्यान तऊ बार - बार चलि
प्रबल प्रहार कै बनति पवि-मार है।
'हरिऔध' कालिका कुपित रसना - समान
बिकरार रुधिर - पिपासित अपार है;
वार करि-करि पार होत है करेजन के,
खल जीह कैसी खर - धार तलवार है।
त्रिपुरारि - त्रितिय - नयन-दव की है दार,
अथवा सहस - फन - फुफकार - झार है;
कालिका करालतर करवाल की है धार,
अथवा कलेवरित काल किलकार है।
'हरिऔध' लोक - लोक विजय-विभूति-सार,
अथवा दुरंतता अपार पारावार है;
प्रलय प्रकोप अवतार पवि प्रतिकार
अतक - पुकार है, या वीर तलवार है।
चरन बिना हुँ अहै चलति अचल माँहि,
करन बिना हुँ वार करति अपार है;
बीरन को मारि - मारि अमर बनावति है,
धीरन को वाकी धार परम अधार है।
'हरिऔध' सतत हरति जन - जीवन है,
जीवन को तबहूँ रखति बहु प्यार है;
पानिप अछत सदा रहति पिपासित है,
तेजवारी ह्वै कै तमवारी तरवार है।

कहाँ जैए, कीजै कहा, काहि को सुनैए पीर,
छोरि को धरा के कैसे नभ मै बनैए ऐन ;
रोम-रोम माँहि काहें दाह उपजावत हैं,
परम सलोने मंजु सुधा मै समोए बैन।
'हरिऔध' साँसत पै साँसत करति काहे,
करि-करि सौ-सौ फंद सहज सुखद सैन ;
ओखे-ओखे पेचन मै पारत है काहे प्रान,
चोखे-चोखे रस पोखे काहू के अनोखे नैन।
नाहिं जो जगावत रहत हौ सनेह दै-दै,
जीवन-प्रदीप-जोति कैसे तो जगा रहे ;
सुधि हूँ न लेत कैसे बेसुध भए हौ हाय,
साध जो न पूजी कैसे सुध तो सगी रहे।
'हरिऔध' जाको हेरि-हेरि कै ठगौरी परी,
ठग बनि सोई काहे करत ठगी रहे ;
मुँह न लगत, कहे बिलग न मानो लाल,
लग न लगे, तो कैसे लगन लगी रहे।

सरस सवैए

बूँद ले मोती पिरोती मिली,
किसके लिये बारिधि में बसी सीपी ;

ले बहु रंग बलाहक ब्योम को
छींट बनाता है कौन-सा छीपी।
क्यों है दिखाती प्रतीची दिशा
प्रतिवासर मंजु महावर-लीपी;
पा सका कौन पता, मिले पावस
क्यों है पपीहा पुकारता पी-पी।

केते कलङ्क भयों के भए बलि,
केते गए गरिमा से गिले है;
ऐसे अनेक धरा मै धँसे,
जिनके मुख-पंकज हू न खिले है।
छीजि गए अजौ छीजत जात,
तऊ हिय पाहन-से न हिले है;
धूर पै फूल-से बाल मरे बहु,
धूल मै लाखन लाल मिले है।

तरवारें चली युग भौहन की,
दृग-गोलन हू की चली दुनली;
उनको हियरो बहु बेधो गयो,
इनकी भई छाती छतों की थली।
इतै घायल ह्वै ब्रजलाल गिरे,
उतै घूम गिरी बृखभानु-लली;
चले नैन के बान दुहूँ दिसि से,
दुहूँ ओर ते सैन की सैन चली।

सीतल कैसे असीतल ह्वै गयो,
है रस काहे नही सरसावत;
जो है सगो बहु सोच बिमोचन,
छोरि सकोच सो काहे सतावत!
जाको बिसास हुतो 'हरिऔध',
सोई ह्वै बिसासी कहा कलपावत;
आगि लगावत जो उर में,
अँखियान मै तो अँसुआ कत आवत।
चूमत घूमत है कुसमावलि,
झूमत झौरत ही निबही है;
चाह रही रस की उर मे,
न सनेह सुधा-रस-धार बही है।
लोयन मे रज नावन बानि,
न केतकी ने कर कानि गही है;
प्रीति तजे अनरीति किए,
अलि! काकी कहाँ परतीति रही है।
आए लला ह्वै ललाम गयो ब्रज,
कालिमा केलि निकुंज तजै लगी;
छाई छटा तरु-जूहन मै,
छिति की छबि-पुंजता फेर छजै लगी।
ए 'हरिऔध' लसी कुसुमावलि,
लोनी लता नवसाज सजै लगी;

बावरी कै ब्रज की बनितान को,
बाँसुरिया बन फेर बजै लगी।
लोचन है जन लोचन मोहन,
सोच-बिमोचन हैं बसु जाम के;
जीवन है जग जीवन के अरु
मूरि सजीवन हैं दुख दाम के।
हैं 'हरिऔध' मयंक-लौ मोहक,
मजुल दीपक है छबि-धाम के;
देवकुमार लौ हैं कमनीय,
महा सुकुमार कुमार हैं काम के।

बिहारी-दर्शन

(हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार महाकवि बिहारी का परिचय और आलोचना)

[लेखक, हिंदी-साहित्य के श्रेष्ठ समालोचक साहित्याचार्य पं० लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी, साहित्यरत्न]

यह साहित्य-गुरु गंभीर सुंदर ग्रंथ विद्वान् लेखक के बारह वर्ष के घोर परिश्रम का मनोहर परिणाम है। इसमें समालोचना की एक सर्वथा नूतन और अत्यंत रोचक शैली से हिंदी-भाषा के पीयूषवर्षी महाकवि और सर्वश्रेष्ठ कलाकार श्रीबिहारीलालजी की कविता पर प्रकाश डाला गया है। अध्ययनशील मर्मज्ञ लेखक ने जिस सरस और प्रवाह-पूर्ण भाषा में काव्य और उसके विभिन्न अंगों पर पांडित्य-पूर्ण प्रकाश डालते हुए समालोचना में विशद विवेचना को जो आश्रय दिया है, और ब्रज-भाषा-काव्य की आत्मा का रहस्योद्घाटन किया है, वह केवल देखने या पढ़ने की ही नहीं, वरन् मनन करने की वस्तु है। इस ग्रंथ से मालूम होगा कि ब्रज-भाषा का साहित्य कितना गौरवशाली है, प्रेम और सौंदर्य का तथ्य क्या है, काव्य का विकास और भाषा का सौष्ठव किसे कहते हैं, तथा कुशल कलाकार कवि हृदय के कोमल-से-कोमल भावों को इने-गिने, प्रभावोत्पादक, सरस शब्दों में कैसी सूक्ष्मता से स्पष्ट करता है। इस एक ही ग्रंथ में सरसता का सागर, पांडित्य का पीयूष, काव्य की कलित कौमुदी, भाषा की भव्यता, समालोचना का सौष्ठव, विवेचना का वैभव, व्याख्या की विशदता, मनोभावों की मनोरमता, अनुभावों का आनंद, प्रकृति-वर्णन में पूर्ण पर्यवेक्षण, भक्ति, नीति, गणित, दर्शन, ज्योतिष, राजनीति और मनोविज्ञान की मनोहर मीमांसा का जमघट देखकर आप इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किए बिना रह ही नहीं सकते। एक बार इस ग्रंथ-रत्न को अवश्य पढ़िए। मूल्य २), सजिल्द २॥)

ब्रज-भारती

(ब्रजभाषा-साहित्य का युगांतरकारी अनुपम काव्य-ग्रंथ)

[लेखक, कविवर पं० उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' एम्० ए०]

ब्रज भारती की प्रशंसा बड़े-बड़े दिग्गज साहित्यिकों ने एक स्वर से की है। हिंदी-संसार के सुपरिचित विद्वान् समालोचक-सम्राट् रायबहादुर पं० शुकदेवविहारी मिश्र इस काव्य की सरस, सरल, शुद्ध एवं सर्वांग-पूर्ण भाषा तथा शैली से प्रभावित हो, इसकी नवीनता, विषय बहुलता, विचार-गंभीरता, मौलिकता और मधुरता पर मुग्ध हो इसे ब्रजभाषा-साहित्य का 'परमोत्कृष्ट ग्रंथ' मानते हैं। पुस्तक की भूमिका में हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी एम्० ए० (लंदन) लिखते हैं—"ब्रजभाषा के लिये यह ग्रंथ युगांतर करनेवाला है। ब्रजभाषा में नवीन शैली के छंदों और आधुनिक ढंग के विषयों का ऐसा सुंदर समावेश करने का सर्व-प्रथम श्रेय 'उमेश'जी को है। इसमें ब्रजभाषा के नवीन भावों के व्यक्त करने की शक्ति का अच्छा परिचय दिया गया है। इस काव्य ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्रजभाषा में जो लोच और लचक है, वह आधुनिक काल की उष्णता और भार को सहन कर सकती है। 'उमेश'जी का केवल यह सफल प्रयोग ही उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बनाने के लिये पर्याप्त है, और जो लोग ब्रजभाषा के प्रेमी हैं, वे इसके लिये—यह प्रमाणित करने के लिये कि ब्रजभाषा अब भी जीवित-जाग्रत् तथा शक्तिशाली है—उनके चिर कृतज्ञ रहेंगे।"

मूल्य सादी ॥।), सजिल्द १।)

गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ

हिंदी-संसार के सर्वश्रेष्ठ संपादक, सफल प्रकाशक और
देव-पुरस्कार के प्रख्यात प्रथम विजेता

महाकवि

श्रीदुलारेलालजी भार्गव

द्वारा संपादित

सुधा

के ग्राहक बनें !

क्यों ?—इसलिये कि

'सुधा' हिंदी की समस्त मासिक पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ है, इस बात को हिंदी के दिग्गज विद्वानों और सुविख्यात साहित्य-महारथियों ने एकमत से स्वीकार किया है। इसके ज्ञान-गर्भित लेख, मार्मिक कविताएँ, हृत्तंत्री को झंकृत और स्तब्ध कर देनेवाली आख्यायिकाएँ, गंभीर प्रांजल संपादकीय विचार, सुचारु चयन तथा वर्धनशील हिंदी-साहित्य-संबंधी सूचनाएँ अत्यंत उपादेय और संग्रहणीय होती हैं। कई तिरंगे, दुरंगे और ढेरों एकरंगे चित्र और मनोरम छपाई तो विख्यात गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस की मुद्रण-कला का आदर्श ही होती है।

तिस पर भी एक बहुत बड़ा लाभ

यह है कि यदि आप इसके एक साल के लिये ग्राहक बन जायँगे, तो आपको १) मूल्य की गंगा-पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें उपहार में दी जायँगी।

वार्षिक मूल्य—राजसंस्करण १२), साधारण संस्करण ६), और सस्ता संस्करण ४)। जो पसंद हो, उसके ग्राहक बनें।

मैनेजर, गंगा-ग्रंथागार, ३० अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ